(All rights reserved.)

Published by Mehrchand Laxmandas Jain Proprietors Sanskrit Book Depot, Lahore and Printed by Rameshandra Yesu Shelge, at the Nirnaya-Sagar Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय ।

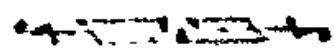

प्रिय महाशयगण ! इस ग्रन्थके लेखक श्रीमान जैनमुनि पं० **ज्ञानचन्द्रजी महाराज** हैं. आपका जन्म जिला लाहौर पट्टी नामक नगरमें लाला अमीचन्द्र ओसवालकी धर्मपत्नी श्रीमती खुशालदेवीकी कुक्षिसे १९५३ में हुआ था आपने पट्टी वा क्षेमकरणमें मिडिलपर्यन्त अंग्रेजी स्कूलमें शिक्षा प्राप्त की ।

वि० सम्वत् १९६७ में श्री श्री श्री १००८ गणावच्छेदक वा स्थविरपदविभूषित स्वामी **गणपति रायजी महाराज,** श्री ३ स्वामी **शालिग्रामजी महाराज,** श्री ३ उपाध्याय स्वामी **आत्मारामजी महाराज** और श्री ३ स्वामी **ख़ज़ानचन्द्रजी महाराज** ठाणे ६ लाला गौरी शंकर और बाबू परमानंद बी. ए. वकीलकी हवेलीमें चतुर्मास स्थित थे । सो उन्हीं दिनोंमें आप भी लाला जविन्देशाह आशाराम अर्ज़ीनवीसके गृहमें आये हुये थे । आपको मुनिराजोंकी संगतिसे वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया फिर आपने १९६७ मार्गशीर्ष कृष्ण पंचदशीको फिरोजपुरमें लाला माणकचन्द्र साहूकारकी कोठीमें दीक्षा धारण की. आप श्री **उपाध्याय आत्मारामजी** महाराजके शिष्य हुये फिर आपने प्रेमपूर्वक विद्या अध्ययन करना आरम्भ किया

१ इसके अतिरिक्त आपको गुजराती बंगाली मरहठी गुरुमुखी आदि भाषाओंका भी बहुतही अच्छा बोध था

विना अध्ययन के पश्चात् जो आपको अन्य समय मिलता था उस समय आप लेख या पुस्तक लिखते थे जिसका प्रभाव समाजमें बहुतही शुभ हुआ।

आपने स्वामी गणावच्छेदक और उपाध्यायजीके साथ निम्न प्रकारसे चतुर्मास किये।

१९६८ का चतुर्मास आपने अम्बाला नगरमें किया वहां पर आपने "जैनआस्तिक सिद्धि" नामक ग्रन्थ उर्दूमें लिखा।

सम्वत् १९६९ में द्वितीय चतुर्मास लुधियाना में किया, इस चतुर्मास में आपने व्याकरणनिर्णय, सामायिकसूत्र हिंदी पदार्थ या भावार्थयुक्त और गृहस्थधर्म यह ग्रन्थ लिखे।

१९७० का तृतीय चतुर्मास आपका फरीदकोट नगरमें हुआ जिसमें आपने "जैन बालोपदेश" बहुतही सुन्दर पुस्तक लिखा।

१९७१ में चतुर्थ चतुर्मास आपने कसूरमें किया वहां पर आपने 'ब्रह्मचर्यदिग्दर्शन' पुस्तक लिखा।

१९७२ में पंचम चतुर्मास आपने नाभा स्थानमें किया, वहां पर श्री पूज्य "मोतीरामजी महाराज का जीवन-चरित्र" लिखा और आपने इस चतुर्मासतक श्री उपाध्यायजी महाराजसे जैन धर्म के २४ मूल पढे और कई शास्त्रोंसे प्रति चतुर्मासमें संस्कृत पढे थे सो आपने व्याकरण ग्रन्थोंमें शाकटायन प्रक्रिया सहित शाकटायनकृत अमोघवृत्ति, हेमचन्द्राचार्यकृत हेमशब्दानुशासन पढन किये। नीति और काव्य ग्रन्थोंमें आपने पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, मेघदूत, पार्श्वाभ्युदय, मुग्धबोध

इत्यादि ग्रन्थ पढ़े। व्याकरणोंमें—आपने सारस्वतटीका, परिभाषेन्दुशेखर, लघुकौमुदी, तत्त्वार्थसूत्र, लघुसिद्धान्तकौमुदीटीका, व्याकरणचन्द्रिका, शाब्दबोधप्रक्रिया इत्यादि ग्रन्थ पढ़े प्राकृत ग्रन्थोंमें—मुख्योंमें अतिरिक्त प्राकृत व्याकरण और देशीनाममाला पढ़ने की। कोषोंमें—अमरकोष और धनञ्जयनाममाला पढ़ी आपको संस्कृतका बहुतही अच्छा बोध हो गया था इसी कारण आपने "आचाराङ्गसूत्र" की संस्कृत छायावृत्ति नामक वृत्ति लिखनी प्रारम्भ की थी। लिखके देवद्रव्यविषयके पांच लेख मात्रही आप लिखने पाए और साथही उक्त व्याकरणके कुछ अंशोंका हिंदी अनुवाद भी किया।

आपकी यह भी एक अत्युच्च अभिलाषा थी कि भगवान् वर्द्धमान स्वामीजीका एक ऐसा जीवनचरित्र लिखा जावे जो प्रत्येक वर्ष भगवानके जन्म दिन पर पठन उपयोगी हो इसी आशासे प्रेरित होकर आपने यह काम आपने हाथमें लिया किन्तु महाशोकसे लिखना पड़ता है कि आपको संघके दुर्भाग्य योग से विषमज्वर हो गया, फिर आप अपने गुरुमोसहित विहार करते हुए वर्षाकाल महीने तक मगसीपान गांवमें आपने विराजमान हो गये आपकी अत्यन्त अस्वस्थतासे अनुमान होता था आपका अन्तसमय समीप है इससे संघके कितने ही [illegible] आपके [illegible] देखने [illegible] को जिनके [illegible] वहां आकर [illegible] आपके [illegible] इस [illegible] [illegible] [illegible]

इस समय मैं आपका लिखा हुआ श्रीवर्द्धमानस्वामीजीका जीवनचरित्र जो कुछ अंशमें अपूर्ण था उसको श्री उपाध्याय आत्मारामजी महाराजसे पूर्ण कराके प्रसिद्ध करनेमें उद्यत हुआ हूं।

यद्यपि आपका उद्देश इस ग्रन्थको विस्तारपूर्वक लिखनेका था परन्तु कालकी विचित्रतासे अब यह सदैव जन्मोत्सवके दिन पठन करनेके लिये निबन्धरूपसेही बन सका इसलिये प्रत्येक व्यक्तिसे विनयपूर्वक मेरी विज्ञप्ति है कि प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ला तेरह १३ के दिन भगवानका जन्मोत्सव मनाते हुये प्रसिद्ध मंडपमें एक उपदेशक खड़ा होकर इस निबंधको पढ़कर अवश्यही सुनावे जिसके प्रयोगसे समाजको भगवानका जीवनवृत्तांत ज्ञात हो जावे और उसकी शिक्षासे अपने जीवनको सुधारे।

भवदीय

खज़ानची राम जैन

मंत्री—श्री श्वे० स्था० जैनकुमार सभा लाहौर.

श्रीवर्द्धमानाय नमः

जैनमुनि पं. ज्ञानचन्द्रजीमहाराजविरचित

श्रीभगवान् वर्द्धमानस्वामीजी महाराज

का

जीवनचरित्र.

प्रिय पाठकगण! श्रीमद्वीर स्वामी जैन मतमें जैनियोंके परमपूज्य परमात्मस्वरूप चतुर्विंशति तीर्थंकरोंमेंसे अवसानके चौवीसवें तीर्थंकर हुये हैं जिनका जीवनवृत्तांत आज आपके सन्मुख प्रगट किया जाताहै—

आज से २५१५ वर्ष पहिले (इसी सनसे ५९५ वर्ष पूर्व) इसी आर्य भरतक्षेत्रमें "कुण्डलपुर" नामक एक नगर वसता था जिसकी मेदिनी (पृथ्वी, जमीन) पुरवासियोंके अति-

"दिन दोगुनी रात चौगुनी" के न्यायसे वृद्धि प्राप्त कर रही थी।

अपितु राजा का एक कुमार था जो त्रिशलादेवी का अंगजात परम तीक्ष्ण बुद्धियुक्त और द्विसप्तति (७२) कलाओंमें कुशल तथा चतुर था, "नंदिवर्द्धन" नामसे सुशोभित अथवा युवराज पदवी का धारक था, जिसकी एक कनिष्ठा भगिनी "सुदर्शना" नामा थी जो शीलवती और सुशीला थी।

ऐसे विख्यात कुटुम्बसे युक्त श्रावक धर्म को पालते हुये राजा और राणी अत्यन्त सुखपूर्वक आयु व्यतीत कर रहे थे। एकदा राणीजी अपने वासभवनमें बैठी थीं, जो नाना प्रकारके मनोहर चित्रोंसे चित्रित था, जिसका भूमितल (फरश) विविध प्रकारके रत्नों, मणियों तथा मोतियोंसे विरचित था, अनेक भांतिके मनोज्ञ, चित्ताकर्षक और दर्शनीय पदार्थोंसे अलङ्कृत था, प्रासादपृष्ठ (राजभवन की छत) पर मनरंजक वस्त्र तथा चंदोये लगाये हुये थे जिन पर गज, अश्व, मृग, वृषभ, मयूर, हंस, शुक, मृगराज, देव, देवाङ्गना, कुसुम, लतासमूह, पद्मकमल, प्रभृतिके हृदयआह्लादक और विचित्र चित्र अंकित थे, जिनसे वह राजभवन मानों स्वर्ग-भवनको भी लजाता था। तथा उस भवनमें ऐसे उद्योतक वा परम प्रकाशक मणि जड़े हुये थे जो अमावस्याकी अंधकार-युक्त निशामें भी मध्यान्ह की प्रभा का परिचय दे रहे थे।

ऐसे परम रमणीक प्रासादमें एक शय्या थी जो दोनों ओरसे उन्नत और मध्यमें गम्भीर थी, जिसके प्रत्येक पार्श्वमें अतीव सुकोमल तथा बहुमूल्य उपधान (सहाने) शोभायमान थे, उस शय्यापर ऐसे वस्त्र बिछे हुये थे जो कि मूल्यमें बहुत अधिक और भारमें बहुत हलके थे परन्तु अति कोमल, स्पर्शयोग्य और सुन्दर थे, जिनपर प्रधान सुगन्धियुक्त पांच वर्णके पुष्प बखेरे हुये थे यावत् वह शय्या ऐसी थी कि जिसके देखतेही शरीर रोमांचित और मन प्रसन्न होता था।

किसी समय अर्द्ध रात्रिके व्यतीत हो जानेपर और अर्द्ध रात्रिके शेष रहने पर जब राणी पूर्वोक्त प्रासादमें सुयुक्त शय्या पर सुखसे शयनकररही थी तो उसे निम्न प्रकारसे निम्नलिखित स्वप्न आने प्रारम्भ हुये।

प्रथम स्वप्नमें राणी क्यो देखती है कि एक हस्ती है जिसके चार दांत हैं और शरीर बड़ा ऊंचा विशाल तथा महान् बलिष्ठ है, जिसका वर्ण दूधरज वा दुग्ध और शशिकिरणोंसे भी अधिक उज्वल श्वेत वर्ण है, वह गजराज बल और कांतिसे महोन्मत्त हो रहा है।

द्वितीय-एक वृषभ (बैल) देखा जो महा शुक्लवर्णीय, उन्नत स्कन्धयुक्त तथा तीक्ष्ण शृंगधारक था जिसके रोम कोमल तथा मांस उपचित और शरीरका गठन बडा प्रमोदजनक था।

तृतीय-संगमरमर पाषाणसे भी अधिक निर्मल, श्वेत-

वर्णीय, दर्शनीय, तीक्ष्ण नख या दांतयुक्त, रक्तवर्णीय जिह्वा या तालु तथा पीतवर्णीय उन्मिलित नेत्रोंवाले ऐसे प्रधान केसरी (मृगराज या सिंह) को देखा।

चतुर्थ—चन्द्रमासे भी अधिक कांतिवाली सर्वाङ्गपूर्णा, परम आनन्द उत्पादिका, कमलवत् विकसितनेत्रा और प्रफुल्लितवदना ऐसी श्रीलक्ष्मी देवीको स्वप्नमें देखा।

पंचम—एक मनोहर पंचवर्णीय तथा श्रेष्ठ सुगन्धित पुष्पोंसे रचित पुष्पमालाको देखा।

षष्ठ—एक चन्द्रमा देखा जिसकी षोडश (१६) कला चारों दिशाओंमें शीतल प्रकाशकर रही हैं जिसके दर्शन मात्रसे चित्त प्रसन्न होता था।

सप्तम—दश दिशाओंका तिमिरनाशक, रक्ताशोक पुष्पके समान लाल, सूर्य्यमुखी कमलोंका प्रतिबोधक, गगनदीपक, शीतविध्वंसक, उष्णतादायक और सहस्रकिरण ऐसे उदय होते हुये दिवसनाथ अर्थात् सूर्य्यको स्वप्नमें देखा।

अष्टम—राणीजीने एक ध्वजा देखी जिसमें पावकसे शुद्ध किये हुये प्रधान काञ्चनका दण्ड (डंडा) है ऊपरके भागमें विविध प्रकारके रत्न जटित हैं, ऊंचाईमें वह ध्वजा ऐसी देखी कि जिसको गगनचुम्बी कहना भी यथोचित है।

नवम रत्नोंसे विभूषित, पुष्पोंसे मण्डित परम सुशोभित एक कलश देखा।

दशम एक बड़ा दिव्य सरोवर देखा जो स्वच्छ वासना वाला तथा शीतल जलसे पूर्ण है, जिसमें पद्मकमल, शतपत्र,

महत्पत्र आदि अनेक कमल वा पुष्प विकसित होकर अपनी तथा उस पद्मसरोवर की सुन्दरता दोगुनी चौगुनी कर रहे हैं, जिसपर चढनेके लिये चारों दिशाओंमें नेत्र-रंजक श्रेणियां बनी हुई हैं।

एकादश-उदधि शिरोमणि तथा अथाह जलके धारक क्षीरसागरको स्वप्नमें देखा।

द्वादश-अंधकारको तिलांजलि देनेवाला, बहुमूल्य मणियोंसे अलंकृत, प्रकाशकारक ऐसा आकाशस्थ अनुपम देव-विमान व्योमसे उतरकर मेरे मुखमें प्रवेशकर गया है यह द्वादशवें स्वप्नमें देखा।

त्रयोदश-विविध वर्णीय तथा अनेक प्रकारके रत्नोंकी राशिको देखा जो मनुष्योंको तो क्या सुरोंको भी प्रार्थनीय वा दर्शनीय है।

चतुर्दश-मधु, घृत, तथा अन्य सुन्दर पदार्थोंद्वारा सिंचित अग्निकी नाईं परम शुद्ध, निर्मल, देदीप्यमान निर्धूम अग्नि शिखाको १४ वें स्वप्नमें देखा।

इस अन्तिम स्वप्नके पूर्ण होते ही राणीजीके नेत्र खुल गये, और निद्रा त्यागकर वह शय्यापर बैठ गई तब आये हुये समस्त स्वप्नोंको स्मरण करने लगी जब सर्व स्वप्न स्मरण कर लिये तब मन आलस्यरहित हो गया।

उस समय त्रिशलादेवी (राणी) उठकर राजाजीके पास गई और प्रणाम करके बैठकर सविनय प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामिन! मुझे आज रात्रिके समय पूर्वोक्त चतुर्दश

स्वप्न आये हैं सो कृपा करके सुनाओ कि इनका फल मुझे क्या होगा? महाराज सिद्धार्थ इन चतुर्दश स्वप्नोंको सुनकर अत्यन्त रोमांचित तथा अत्यंत हर्षवान हुये और विचार कर बोले। हे देवि! यह समस्त स्वप्न जो तुमने रात्रि में देखे हैं बड़े प्रभाविक उत्तम और शुभकारी हैं इनसे हमारे कल्याण, सुख, अर्थलाभ, भोगलाभकी प्रभूत वृद्धि होगी, अपितु नवमास तथा साढ़ेसात दिनरात्रि पूर्ण होने-पर हमारे एक पुत्ररत्न उत्पन्न होगा जो स्वप्नोंमें लिखित होता है कि वह बालक चक्रवर्ती या धर्मचक्रवर्ती (अर्हत्, देव) होगा क्योंकि यह स्वप्न इन दोनों पदधारियों की माताओंकोही आते हैं अन्यको नहीं, इसलिये हे गुणी! यह स्वप्न बड़े कल्याणकारी शुभ तथा मंगलीक हैं अतः आज से लेकर पहिलेसे भी अधिक हमारे पुण्योदयके दिवस आये हैं इस कारण इनसे प्रतीत होता है कि यह बालक हमारे कुलका दीपक, कुलोद्योतक, वंशकी वृद्धिकारक, महायशस्वी और त्रिभुवनपूज्य होगा, इस कारण तुझे इस गर्भकी बड़े यत्न या परिश्रमसे रक्षा करनी चाहिये। ऐसे स्वप्नफलको श्रवण करके गुणी इतनी प्रमुदित (प्रसन्न) हुई कि मानो उसे उसी समयही सुतरत्नकी प्राप्ति हो गई।

तदनन्तर त्रिशलादेवी राजाको प्रणाम करके अपने प्रासादमें आई और उसी सुखासन पर बैठ गई और उस दिनसे गर्भकी रक्षार्थ निम्नानुसार प्रतिज्ञा करली कि आजसे लेकर मैं कोई भी ऐसा कार्य न करूंगी जिससे मेरे गर्भ

को किसी प्रकारसे कष्ट पहुंचे अर्थात् अति उष्ण, अति शीत, अति रुक्ष, अति स्निग्ध, अधिक कटुक तथा मृदु आदि भोजन करना त्याग दिया और उसी दिनसे चिन्ता, शोक, भय, क्लेश, दुःख आदि अनुभव करना भी त्याग दिया. इस प्रकार सुख अथवा शांतिपूर्वक राणी गर्भकी रक्षा करने लगी।

सो अन्यदा नवमास बहु प्रतिपूर्ण तथा सार्द्ध सप्तदिन रात्रि व्यतिक्रांत होनेपर ग्रीष्म ऋतुके प्रथम मास द्वितीय पक्षमें चैत्रशुदि त्रयोदशीके दिन हस्तोत्तरा नक्षत्रका चन्द्रमासे योग होनेपर श्रीश्रमण भगवान् महावीर महाराजका महान् आरोग्यपूर्वक जन्म हुआ जिसको आज २५१५ वर्ष व्यतीत होगये हैं।

श्रीभगवान् वर्द्धमान (महावीर) स्वामीकी जन्मकुंडली.

तब उसी समय चारों प्रकारके देव और ६४ इन्द्र अत्यन्त आनन्दसे एकत्रित हुये और बालकको मेरु पर्वतपर स्नानार्थ ले गये, स्नानके पश्चात् वादित्रोंकी ध्वनिके मध्यमें देवताओंने

प्रसन्नचित्तसे जन्मोत्सव मनाया तदुपरान्त निजमाताके पास स्थापन करके आकाशमें चले गये।

फिर उसी समय सिद्धार्थ महाराजको सुखदायक जन्मकी खबर दी गई राजा सुनतेही असीम प्रफुल्लित तथा हर्षित हुआ और समस्त नगरमें आनन्दोत्सव करनेके लिये आज्ञा भेज दी उसी समय सारे नगरमें प्रत्येक स्थानपर गन्धयुक्त उदक (जल) द्वारा रज (राख) को उपशान्त किया गया, विविध प्रकारके वादित्रोंके बजनेसे आकाशमंडल गूंजने लगा, अनेक गायक अपने सुन्दर गीतोंसे नागरिक जनोंको प्रसन्न करने लगे चारों ओरसे मुबारिक बादी (धन्यवाद) के नाद सुनाई देने लगे घर २ में मंगलाचार होने लगा नारी पुरुष सबने शक्तिके अनुसार धनव्यय करके जन्मोत्सव मनाया।

महाराज सिद्धार्थने कुमारके जन्मकी खुशीमें कारागारके बन्दियोंको छुड़ादिया तथा दशदिवसके लिये कर (महसूल) का लेना बन्दकर दिया. दानशालायें खोली गई जिनसे अनेक दुःखियों, अनाथों, धनहीनोंको अन्नपान मिलने लगा यावत् समस्त नगरमें यह उद्घोषणा करवाई गई कि कोई पुरुष किसीको दुःख न देवे, जिस किसीको किसी भी वस्तुकी इच्छा हो वह राजद्वारसे ग्रहण करे इस प्रकार कुण्डलपुर नगरमें जन्मका महोत्सव किया गया।

कुमारके माता पिताने प्रथम दिन कुलकी मर्यादाके अनुसार स्थिति कम किया. तृतीयदिन चन्द्रसूर्य्यदर्शन संस्कारके लिये विशेष उत्सव किया गया. षष्ठ दिवसमें रात्रिको धर्म-

जागरना की, एकादश दिवस व्यतीत होनेपर अशुचिकर्मसे निवृत्तिकी तथा द्वादशवें दिवस के प्राप्त होनेपर विस्तीर्ण तथा प्रभूत अन्नपान खाद्य स्वाद्य आदि चारों प्रकारका आहार बनावाकर मित्र, ज्ञाति, सज्जन, सम्बन्धीआदि सकल (सब) को आमन्त्रण दिया, इसके अनंतर स्नानसे शुद्ध होकर प्रधान तथा विविध प्रकारके आभरण अथवा अलंकार-द्वारा शरीरको विभूषित किया, इसके उपरान्त महाराज सिद्धार्थने सर्व ज्ञातियोंसे मिलकर चार प्रकारके आहारका भोजन किया।

भोजनके पश्चात् सर्व सम्बन्धियोंने परम सुन्दर, उज्ज्वल, विशुद्ध, सुगन्धमय जलसे हस्तप्रक्षालन किये, पुनः भगवान् के माता पिताने आगत सम्बन्धियों, सज्जनों और स्वज्ञातियोंका विस्तीर्ण पुष्प, गन्ध, वस्त्रालंकारोंसे यथोचित सत्कार वा सन्मान किया और उनके सन्मुख राजा राणी इस प्रकारसे बोले।

हे देवानुप्रियो! जिस दिनसे यह कुमार गर्भमें आया है उसी दिनसे हमारे राज्यमें हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, प्रतिष्ठा, सन्मान और राज्यकी अतीव वृद्धि हो रही है अतः इसी कारणसे गुणानुसार हम इस कुमारका नाम "वर्द्धमान कुमार" ऐसे स्थापन करते हैं ऐसे आनन्दवर्धक शब्दोंको श्रवण करके सबने धन्यवाद दिया इस प्रकार कथन करके सब जनोंको बड़े सत्कार वा सन्मानसे विसर्जन कर दिया।

तदनंतर श्रीवर्द्धमान स्वामीजी कुमारावस्थामें पर्वतकी

न्दरा (गुफा) में वृक्षके बढनेकी उपमासे निभेय तथा
खपूर्वक वृद्धि पाने लगे।

राणीजीने भगवान्‌की रक्षाके लिये पांच धायमाता
नियुक्त कर दीं यथा—

प्रथम–दुग्ध पिलानेवाली
द्वितीय–मंजन करानेवाली
तृतीय–आभरणोंसे विभूषित करनेवाली
चतुर्थ–अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करानेवाली
पंचम–अंकमें स्थान देनेवाली

इस प्रकारसे पांच धात्रीमाता भगवान्‌का पालन पोषण करनेमें उद्यत हुई और कुमार यथाक्रमसे वृद्धि प्राप्त करने लगे।

इसके पश्चात् क्रम पूर्वक बालावस्थाको त्याग कर भगवान् यौवनावस्थाको प्राप्त हुए और सर्व कलाकुशल, *उद्भट दीर्घदर्शी, अत्यंत बलवान् और महान् शूरवीरोंके भी अग्रणी (मुखिया) हुये।

भगवानके अनेकनाम प्रसिद्ध हुये यथा–महावीर, वर्धमान, श्रमण, ज्ञातवंशीय, ज्ञातपुत्र इत्यादि परन्तु विशेष करके उनके तीन नाम प्रसिद्ध हुए यथा–मातापिताने वृद्धिकारक होनेके कारण "वर्द्धमान" नाम दिया, तथा सहजही शांति

[illegible]

क्षमा और शीतल स्वभाव होनेसे "श्रमण" नाम विख्यात हुआ और महान् उत्कट वा उद्भट परिषह सहन करनेसे "महावीर" नाम प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि बाल्यावस्थासेही आपका मन सांसारिक सुखों वा भोगोंसे विरक्त था तथा स्पर्श, रस, गन्ध, शब्दरूपादि विषयोंसे निवृत्ति और वैराग्य भावमें अधिक प्रवृत्ति थी और आपकी यह अत्युच्च अभिलाषा थी कि गृहस्थाश्रमको त्यागकर मुनि आश्रममें प्रवेश करूं, तदपि माता पिताके अत्यन्त आग्रहसे (अर्थात् मातापिताकी आज्ञाका पालन करना पुत्रका कर्तव्य है इस उद्देशको मुख्य रख कर) आपको गृहस्थाश्रममें ही निवास करना पड़ा, तथा परम विख्यात महाराजाधिराज "प्रश्नजित" राजाकी शीलशिरोमणि, प्रिय पुत्री यशोदाजीसे विवाह भी करना पड़ा परन्तु तौ भी आप निवृत्तिके मार्गसे पीछे नहीं हटे और वैराग्यभावको मनसे जाने नहीं दिया यथोक्तम्—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनञ्चारुगन्धम्।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनश्चेक्षुकाण्डं रसालम्॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तिवर्णम्।
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

अर्थ—पुनः पुनः चंदनको घिसने पर भी चन्दन पूर्वसे प्रधान सुगन्धि देता है, वारम्वार इक्षु (गन्ना) को छेदन करनेसे इक्षु अधिक मीठा रस देता है॥ अनेक वार सुवर्णको

अग्निमें दग्ध करने पर भी काञ्चन अधिक कान्तिवर्ण युक्त (मनोहर रंगवाला) होता है, इसी प्रकार प्राणान्त कष्टके आने पर भी उत्तम पुरुषोंका स्वभाव परिवर्तन नहीं होता।

इस वाक्यके अनुसार भगवान् मातापिताके अतीव आग्रहसे गृहस्थाश्रममें रहते हुये भी क्षान्ति, दान्ति, निरारम्भी और प्रमादरहित थे आपके मातापिताने बहुत वार आपको राज्यसिंहासन प्रदान करनेके लिये प्रस्तुत किया परन्तु बड़े भ्राताके जीवित होने पर राज्यसिंहासन पर बैठना अयोग्य समझकर आपने यह बात स्वीकार न की।

सदैव काल आपके मनमें साधु वृत्ति धारण करनेके तीव्र संकल्प भ्रमण करते रहते थे अतः आपने अनेक वार मातापितासे दीक्षा ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की, परन्तु आपको आज्ञा न मिली तथा मातापिताने कहा, हे वत्स! जबतक हम जीवित है तब तक तुम दीक्षा न लो, हमारी मृत्युके पश्चात् जो तुम्हारी इच्छा होवे सो करना।

महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलाराणी यह दोनों श्रीश्री सर्वज्ञ सर्वदर्शी परम पूज्य २३ वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथजी महाराजके व्रतधारी श्रावक थे इसी कारण गृहस्थ धर्ममें परम दृढ तथा अनुरक्त थे, सदा धर्मध्यानमें समयपूर्ण करते थे।

प्रिय पाठकवृन्द! कालकी गति बड़ी विचित्र है सर्व नर इससे भय खाते है क्योंकि यह इन्द्र, नरेन्द्र, भूपेन्द्र, चक्रवर्ती, अर्हन्त, बलदेव, वासुदेवादि समस्तके शिरोपरि

रक्षाटन (पहरा) करता है काल सबसे बलि है तथा इसे किसीका भी पक्षपात (लिहाज़) नहीं है यह न तो धनाढ्य देखता है और न धनहीन, न विद्वान् और न मूर्ख, न बालक और न वृद्ध, जिस किसीकी आयु पूर्ण हो जाती है चाहे वह कोई भी क्यों नहो शीघ्र ही उसे स्वलोकसे छुड़ाकर परलोकमें स्थान देता है।

सज्जनों! इस परिवर्तीनि संसारमें प्रत्येक जीवने परलोकरूपी पथका पथिक बनना है क्योंकि सदैव कालके लिये न कोई भूतकालमें स्थिर रहा है और नही भविष्यत् कालमें सदाके लिये स्थिर रहेगा।

इसी प्रकार महाराज सिद्धार्थ और त्रिशलादेवी धर्मध्यान में तीव्र संकल्पोंसे परिश्रम कर रहे थे कि अकस्मात् आयु पूर्ण होनेके दिन निकट आगये।

इस लिये भगवान्के मातापिताने समाधि मृत्युके लिये शांतिपूर्वक संस्तारक अनशन करदिया और कालके अवसर पर काल करके परम शुभ प्रणामों अथवा अध्यवसायों और अत्यन्त शुद्ध लेश्याओं द्वारा द्वादशवें अच्युत नामक स्वर्गको प्राप्त किया मृत्युके पश्चात् यथाविधि अग्निसंस्कार किया गया नगरमें महाशोक छा गया क्योंकि महाराजसिद्धार्थ बड़े न्यायशील थे और प्रजाके हितचिंतक वा पिताके सदृश रक्षक थे।

ऐसे समयमें श्रीश्रमण भगवान् महावीरजीने अपने कोमल वचनोंद्वारा अनित्य वा अशरण भावनायें सुनाकर

प्रजाके समाश्वासन बंधाये कुछ दिनोंके पश्चात् शोक दूर हुआ आपके ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्द्धनजी और समस्त प्रजाने एकत्रित होकर आपको राज्यसिंहासन देनेके लिये प्रार्थना की परन्तु आपने इसे स्वीकार न किया परन्तु इस प्रकार कहा, हे विज्ञगणों! मेरी प्रतिज्ञा अब पूर्ण हो चुकी है इस कारण मैं अब मुनिवृत्तिको अंगीकार करूंगा अतः यह राज्य मेरे ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्द्धनजीकोही देना उचित है ऐसे शब्द भाषण करके शीघ्रही भगवानने राज्यमुकुटको स्वहस्तसे नंदिवर्द्धनजीके शिरोपरि स्थापित कर दिया और समस्त प्रजाके समक्ष अपने अपना मनोहर व्याख्यान दिया, भ्रातृगण! आजसे लेकर महाराजाधिराज सिद्धार्थके पदपर श्रीयुत नंदिवर्द्धनजीको नियत किया जाता है अतः नंदिवर्द्धनजी ही राज्य करेंगे इस लिये प्रत्येक जन का यह परम धर्म है कि वह नंदिवर्द्धनजीकी आज्ञाको शिरोपरि धारण करे (इत्यादि)।

इसके अनंतर समस्त राज्यमें उद्घोषणा कर दी गई कि सर्व पुरुष उत्सव करे, ऐसे होने पर सारे नगर में वादित्र बजने लगे घर २ में मंगलाचार होने लगा, गायक गीतोंद्वारा नागरिक जनोंको प्रसन्न करने लगे अतः आनन्दसे पुनः समय व्यतीत होने लगा।

जिस समय आपकी आयु २८ वर्षकी हुई तो आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्द्धनजीसे संयम लेनेके लिये आज्ञा मांगी और एकान्तमें ऐसे कहा कि हे भाई! अब मैं ने आगार वृत्तिको त्याग कर अनगार धर्मको ग्रहण करनेका

अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

अर्थ–विषयासक्त चित्तवालोंको वन में भी लोभमोहादि पाप वृत्तियां लगती हैं। चक्षु कर्णादि इन्द्रियोंका संयमरूप तप नियम तथा धर्मानुष्टान घरमें भी हो सक्ता है। जो पुरुष निन्दारहित पुण्यकर्मोंको करता है और जो विषयवासनादिसे विरक्त है ऐसे धर्मात्मा पुरुषके लिये गृह ही तपोवन है अर्थात् उसके लिये गृह ही धर्मानुष्ठानादि करनेका स्थान है इस कारण, हे भाई! मेरे ऊपर कृपा करके वीतराग भावसे गृहस्थाश्रममें ही जीवन व्यतीत करो अर्थात् भिक्षु बनने वा अटवीमें गमन करनेके संकल्प त्याग दो और मेरी इस दुःख-भरी प्रार्थनाको स्वीकार करो, जब भगवान्ने सर्वथाही प्रार्थना अस्वीकार की तब नंदिवर्द्धनने दो वर्षके लिये अत्यंत आग्रह किया।

यह प्रार्थना सुनकर भगवान्ने देशकाल देखकर अथवा ज्येष्ठ भ्राताकी आज्ञाको उच्च समझकर दो वर्षपर्यन्त और भी संसारमें रहना स्वीकार किया, किन्तु निर्जल तप कर्म वा इन्द्रियनिग्रह, सदाचार धर्म और आत्मा दमनादिमें पूर्वसे भी अधिक प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हुये जब आपको एक वर्ष अतिक्रान्त हो गया तब आपके मनमें *वर्षीयदान

* यह एक स्वाभाविक नियम है–कि जब तीर्थंकर भगवान्के दीक्षित होनेमें एक वर्ष रह जाता है तब वह एक वर्ष तक दान करते हैं।
– व च.

देनेके विचार उत्पन्न हुये, पुनः आपने महाराज नंदिवर्द्धन-जी की आज्ञा ग्रहण करके सर्वत्र निम्न प्रकारसे उद्घोषणा करवा दी कि–

आजसे लेकर इस क्षत्रिय कुण्डलपुर नगरमें एक वर्षतक प्रतिदिन प्रातःकालसे लेकर ६ घड़ी पर्यन्त अन्न, वस्त्र, आभूषण, धनादिका याचकोंको यथेष्ट दान दिया जावेगा, जिस किसीकी इच्छा हो ग्रहण करे।

इस घोषणाको सुनकर दूर २ देश देशान्तरोंके अनेक याचक कुण्डलपुरमें एकत्रित हो गये, तब भगवानने दान देना प्रारम्भ किया, प्रतिदिन एक क्रोड आठ लाख *सुनईये का दान करते थे इसी प्रमाणसे भगवानने तीन अरब, अठासी करोड़ अस्सी लाख सुनईयोंका दान किया।

जब आपको पूर्वोक्त परिमाणसे दान देते एक वर्ष हो गया और दो वर्ष की गृहस्थस्थिति की प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो चुकी, तब आपने संयम लेनेके लिये अपना अभिप्राय महाराज नंदिवर्द्धनजीके सामने प्रगट किया, आपके ज्येष्ठ भ्राताने बहुत प्रकारसे नम्र भावसे फिर प्रार्थना की परन्तु आपने स्वीकार न की क्योंकि प्रतिज्ञाका समय पूर्ण हो चुका था।

तब महाराज नंदिवर्द्धनने (जिसको एक सहस्र पुरुष उठा सकें) एक शिविका (पालकी) बड़े समारोहसे तय्यार कर-

* एक सुनइया अनुमान १२ मासे या ८० रत्तीका सर्वांग स्वर्णमय होता है इस प्रमाणसे एक वर्ष में दान दिये हुये समस्त सुनइयोंका प्रमाण (वजन) एक लाख बत्तीस हजार चालीस १,३२,०४० मन होता है।

गई जो विविध प्रकारके मणियों, रत्नों वा अलंकारोंसे विभूषित थी और भगवान् प्रधान सुगन्धियुक्त जलसे स्नान करके वा अर्द्धहार, हार मुकुटादि अनेक प्रकारके भूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत करके उस शिविकामें बैठ गये तथा बड़ी ऋद्धिसे वा सहस्रों लक्षों देवों और पुरुषोंके समुदायसे प्रवृत्त हुए २ सैंकडों वादित्रोंके गगनव्यापी नादोंद्वारा बड़े महोत्सवके साथ कुण्डलपुर नगरमें हेमन्त ऋतुके प्रथम मासके प्रथम पक्ष में मार्गशिर वदि दशमीको सुव्रत नामक दिवसके अपराण्ह समय विजय मुहूर्त्तमें हस्तोत्तरा नक्षत्रका चन्द्रमासे योग होने पर वनकी ओर चल पड़े।—

जब नव न्यात खंड नामक उद्यानमें पहुंचे तब पूर्व दिशा की ओर मुख करके वह महन्त पुरुष वाहिनी शिविका रखी गई तब भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामीजी उसमें से उतर कर बड़े रमणीय वा मनोहर विरचित आसनपर पूर्व दिशाको मुख करके बैठ गये और समग्र आभूषण उतार डाले तथा स्वयंही पंच मुष्टि लोचकी अर्थात् शिरपर जितने भी केश थे वह सब अपने हाथसे उखाड़कर उतार दिये उस समय देवों और मनुष्यों की परिषद् चित्र के समान चुप चाप एकाग्र मन से देख रही थी।

अनंतर भगवान ने उस परिषद् के मध्यमें निम्न लिखित सूत्रद्वारा सामायिक चारित्र ग्रहण किया—

"सिद्धाणं नमोक्कारेणं करेमि. सव्वं मे अकरणिज्जं पाव कम्मं त्तिकट्टु सामायियं चरित्तं पडिवज्जिनित्ता"

अर्थ—मैं सिद्धोंको नमस्कार करके प्रतिज्ञा करता हूं कि-आज से लेकर मैं कभी *पाप कर्म नहीं करूंगा तथा पांच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह को धारण करता हूं, अबसे मैं कदापि बिना देखे न चलूंगा, बिना विचारे न बोलूंगा, दोषरहित अन्न पानी ग्रहण करूंगा, वस्तुओं को उठाते रखते सदा यत्नके साथ बर्त्ताव करूंगा और मलोत्सर्गादि कार्यों में भी यथायोग्य यत्न करूंगा मैं मन वचन काया इन तीनों गुप्तियों को धारण करता हूं यदि आजसे लेकर मुझे कोई देवता, देवी, मनुष्य अथवा तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग होगा तो मैं उसे शांतिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे सहन करूंगा।

यदि द्वाविंशति (२२) †परिषहोंमें से मुझे कोई परि-

---

* (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रतिअरति (१७) मायामोषा (१८) मिथ्या दर्शन शल्य इनको १८ पापकर्म कहते हैं.

† द्वाविंशति परिषहोंके निम्न लिखित नाम हैं (दिगिच्छापरिसहे) क्षुधाका परिषह १ (पिवासापरिसहे) तृषाका परिषह २ (सीयपरिसहे) शीतपरिषह ३ (उसिणपरिसहे) उष्णपरिषह ४ (दंसमसगपरिसहे) दंशमशकपरिषह ५ (अचेलपरिसहे) अचलपरिषह ६ (अरइपरिसहे) अरतिपरिषह ७ (इत्थीपरिसहे) स्त्रीपरिषह ८ (चरियापरिसहे) चर्य्यापरिषह ९ (निसाहियापरिसहे) बैठनेका परिषह १० (सिज्जापरिसहे) शय्यापरिषह ११ (अक्कोसपरिसहे) आक्रोश परिषह १२ (वहपरिसहे) वधपरिषह १३ (जायणापरिसहे) याचनापरिषह १४ (अलाभपरिसहे) अलाभपरिषह १५ (रोगपरिसहे) रोगपरिषह १६ (तणफासपरिसहे) तृणस्पर्शपरिषह १७ (जल्लपरिसहे) प्रस्वेदकापरिषह १८ (सक्का-

पह होगा तो मैं उसे निःकषाय होकर सहूंगा और जबतक मुझे केवल ज्ञान उत्पन्न न होगा तबतक मैं व्याख्यानादि क्रियाओं से भी पृथक् रहूंगा

इस प्रकारकी प्रतिज्ञाकरके भगवान्ने वहांसे विहार कर-दिया तब आपके ज्येष्ठ भ्राता महाराज नंदिवर्द्धनजी आपके वियोगसे परम दुःखित वा व्याकुल होकर पीछे लौटते समय महाविलाप करने लगे. हतोत्साह वा अधीर होकर अपने दुःखको निम्न प्रकारसे प्रगट करने लगे यथा—

त्वया विना वीर कथं व्रजामो,
गृहेऽधुना शून्यवनोपमाने।
गोष्ठीसुखं केन सहाचरामो
भोक्ष्यामहे केन सहाथ बंधो॥

अर्थ–हे भाई! तुझ अद्वितीय (अकेले) को छोड़कर हम शून्य वन समान स्वगृहमें तेरे विना किस प्रकार जायें अर्थात् तेरे विना राजभवनमें जाने और राज्य का सुख भोगनेको हमारा मन नहीं चाहता है. हे वीर! तेरे विना मेरा कोई सहोदर भी नहीं है इस लिये किसके साथ मैं वार्त्तालापादि क्रियाओंको करूंगा तथा किसके साथ बैठ कर भोजन किया करूंगा।

[illegible] इनके [illegible] पूर्ण [illegible] उत्तराध्ययन सूत्रके [illegible]

अनंतर श्रीश्रमण भगवान् महावीरजी महाराज शंखके समान निरंजन, जीवके समान अप्रति हतगति, वायुके सदृश अप्रतिबद्ध विहारी और सिंहकीनाई निर्भीक होकर कर्मरूपी शत्रुओंको हनन करते हुये विचरने लगे, जिन्हों ने जीवित रहने की आशा और मृत्युके भयको मनसे नितांत उठा दिया. चाहे कैसा भी भीम से भीम कष्ट क्यों न आजावे, भगवान् लेशमात्र भी क्रोध नहीं करते थे परन्तु उस परिषह वा उपसर्ग को बडे साहस वा धीरता से सहन करते थे ।

पुनः आपने तपकर्म करना प्रारम्भ किया ।

एकवार आपने ६ मास पर्यंत तपस्याकी अर्थात् षट्मास तक आपने निर्जल तथा निराहार व्रत धारण किया पुनः दूसरी वार आपने पांच दिन न्यून (कम) षट्मास पर्यन्त तप किया. नव वार (९ दफा) आपने चार २ मासपर्यन्त अन्नपान नही किया. दोवार तीन २ महीने वा दो वार ढाई २ महीने और ६ वार दो मासपर्यंत आप निर्जल व्रत धारी रहे !

एक मास भर निरशन व्रती रहना ऐसे आपने द्वादश (१२) वार एक २ मास किये. अर्द्ध २ मास तक (पंद्रह २ दिनतक) व्रतधारण करना ऐसे आपने ७२ वार १५-१५ व्रत किये । २२९ वार आपने दो २ दिन तक क्षुधा सहन की. उपरोक्त तपमें आप दिनभर पद्मासन करके और रात्रि को खड़े होकर ध्यान (कायोत्सर्ग) किया करते थे प्रागुक्त

तपस्याके अतिरिक्त आपने *भद्रप्रतिमा (प्रतिज्ञा), महाभद्र प्रतिमा तथा सर्वतोभद्र प्रतिमा और भिक्षुकी द्वादशवीं प्रतिमा ग्रहण की जो श्री दशाश्रुत स्कंध के ७ वें अध्यायमें सविस्तर वर्णन की गई है फिर आप अनेक देशों में पर्यटन करते हुये एक समय आप अनार्य देशमें पधार गये वहांपर आपको अनेक दुःख वा परिषह सहन करने पड़े जिनके सुनने मात्रसे हृदय कांपता है और रोम खड़े हो जाते हैं।

बहुत वार म्लेच्छ पुरुषोंने आपके पीछे बड़े बलवान् वा तीक्ष्ण नख वा दांतोंके धारक श्वान लगा दिये वह श्वान भगवान् के शरीर से मांस के खंड के खंड खींचके ले जाते थे और फिर म्लेच्छ पुरुष उन व्रणोंपर (जख़्मोंपर) क्षार लवणादि भी डाल देते थे जिससे भगवान्को बड़ी तीव्र और घोर वेदना होती थी परन्तु आपने उन वेदनाओंको ऐसी धीरता से सहन किया कि मन से भी उन म्लेच्छोंपर तनक मात्र दुष्ट अध्यवसाय नहीं किए।

यदि आपको कोई दुष्ट असीम कष्ट भी देता था तो आप उसे कुछ भी नहीं कहते थे परन्तु उसे निवारण करने के लिए भी नहीं कहते थे और निम्न प्रकार से विचार करते थे यथा—

हे आत्मन्! जैसे तूने पूर्वभवमें कर्म किये थे वैसे भोग यह अनार्य्य मेरे शरीर के अतिरिक्त और किसी पदार्थका

* एक २ प्रहरपर्यंत चारोंदिशाओंमें ध्यान करनेको भद्रप्रतिमा, दो २ प्रहर पर्यंत प्रत्येक दिशामें ध्यान करनेको महाभद्र प्रतिमा और चार २ प्रहरपर्यंत प्रत्येक दिशामें ध्यान करनेको सर्वतोभद्र प्रतिमा कहते हैं।

आपके पास चीरमात्र भी वस्त्र न था तब भी आप शीत कालमें जब कि शीतल पवनका वेग असह्य होता है, शरद् ऋतुके होनेसे दांतसे दांत बजता है ऐसी ऋतुमें आप वनमें खड़े होकर, दोनों भुजाओंको फैलाकर ध्यान करते थे और समस्त रात्रि इसी दशामें सम्पूर्ण कर देते थे।

ग्रीष्म ऋतुमें आप प्रचण्डसे प्रचण्ड धूपमें भी 'पद्मासन की गोति पर बैठकर सारा दिन व्यतीत कर देते थे. न उष्णताकी ओर लक्ष है और न घामकी ओर ध्यान किन्तु आप तो अपने काम से काम रखते थे।

जब कोई आपसे अत्यन्त आग्रहसे पूछता था कि-आप कौन हैं? तो आप "मैं भिक्षुहूं" (भिक्षुहं) केवल इतना ही उच्चारण करके मौन हो जाते थे।

इस प्रकार भगवान महावीरजी निरंतर विहारकरने लगे एकदा जब कि आषाढ मास का एक पक्ष अतिक्रांत हो चुका था आप वर्द्धमान ग्राम (अस्थिग्राम) में पधारे और चतुर्मास स्थिति का समय निकट आने के कारण और विहार अनवसर समझकर वहांपर ही चतुर्मास करनेका निश्चय किया, ऐसा निश्चय करके आप ग्राम में गये और वहां चतुर्मास करनेके लिये स्थान पूछा. ग्रामवासियोंने आपको

[illegible]

होकर तपस्वियोंने वह आश्रम और पथिकोंने वह मार्ग छोड़ रखा था जब आप (भगवान्) उस मार्ग पर चलने लगे तब लोगोंने पूर्वोक्त सर्पका सर्व वृत्तांत सुनाकर उस मार्गपर जानेसे रोका परन्तु आप तो बड़े बली थे वज्र ऋषभ नाराच संहननके धारक थे इस लिये आपने यथोचित द्रव्य, क्षेत्र-काल भाव देखकर, तथा कर्मोंके क्षय करने के लिये अथवा चंडकोसिया नामक सर्पको बोध देने के लिये उन पुरुषोंका कथन स्वीकार न किया और उसी मार्गपर चल पड़े जहां उस सर्पकी बिवर थी वहां पहुंचकर उसके ऊपर आप ध्यानारूढ हो गये, कुछ समयके पश्चात् वह सर्प बिलसे निकला और उसने भगवान् को देखकर फुंकार शब्द किया तथा उनके चरणोंपर डंक मारा उस हलाहल ने रुधिर निकालनेके अतिरिक्त और कुछ कष्ट न पहुंचाया।

उस समय चंडकोसिया अपने आक्रमणको असफल देखकर परम रोष में भरगया तब श्री ज्ञात पुत्रजीने उसे बोध दिया और उससे जीवहत्या छुडा दी. सत्य है—

पूर्ण अहिंसक का वचन किसपर असर नहीं करता अर्थात् पूर्ण दयालुका वचन बड़ा प्राभाविक वा शक्तियुक्त होता है वह सब पर अपना प्रभाव डालता है क्योंकि महा हिंसक का मन भी दयामय कर देता है यथा-

अहिंसायां प्रतिष्ठौ तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात् जो दयामें प्रतिष्ठित है उनके पास रहनेवाले हिंसक जीव भी दयायुक्त हो जाते है। सो इनके पीछे अनुक्रमसे

इसमें सम भाव रखते थे सो आपने द्वितीय चतुर्मास राजगृही में ही सम्पूर्ण किया।

सो चतुर्मास के पश्चात् अन्य देशोंमें विचरते हुये चतुर्मास समयके निकट चम्पा नगरीमें पधारे तथा तृतीय चतुर्मास वहीं कर दिया, और दो मास पर्यन्त कायोत्सर्ग कर दिया, यहां जो २ उपसर्ग भगवान्को हुये वह सब शांति प्रणामोंसे अर्हन् श्रीवीर प्रभुने सहन किये।

फिर चार मासका समय पूर्ण करके निरंतर विचरते हुए पीछे चम्पापुरमें विराजमान हुए और चार मासका कायोत्सर्ग करके वहीं चतुर्थ चतुर्मास किया। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, कर्कश शय्या, जलमल और घाम आदि अनेक परिषहोंको सम्यक् प्रकारसे सहन किया जब चतुर्मास सम्पूर्ण हो गया तब आपने चम्पावासी अभिनव सेठके घरमें पारणा किया. पुनः आप कयंगल देशमें विचरने लगे, वहां से आगे लाट देशमें चले गये. इस प्रकार भ्रमण करते २ आप भद्रिका नगरीमें पधारे तथा पंचवाँ और छट्ठा चतुर्मास इस नगरीमें किया पहिलेकी अपेक्षा आपको यहां पर स्वल्प उपसर्ग हुये।

फिर सप्तम चतुर्मास आपने आलम्बिका नगरीमें किया. यहां आपको शीतका अत्यंत घोर परिषह सहन करना पड़ा इनके पीछे अष्टम चतुर्मास राजगृहीमें, नवम चतुर्मास अनार्य देशमें किया यहां पर जो उपसर्ग परिषह, दुःख वा कष्टादिकी सीमा न रही

अनार्य्योंने आपको बड़ी निर्दयतासे यष्टि या मुष्टि प्रहारोंसे दुःख दिया, आपके परम सुकोमल शरीरको मृगयोत्सुक श्वानोंसे विदीर्ण करवाया, और घावोंपर लवणसे भी अधिक क्षारी वस्तु डाली परन्तु आपका मन ऐसा अडोल था कि इन दुःसह कष्टोंमें रञ्चमात्र भी नहीं घबराये, परन्तु आपने वहांपर अपनी असीम धृष्टता या सहनशीलताका परिचय दिया।

आप दयाभावमें भी परमोच्च थे।

एकदा आप कूर्म ग्राममें पधारे, जब कि गोशाला भी आपके संगमें था, वहां पर एक बड़ी लम्बी २ जटाओंवाला तपस्वी रहता था जिसे तपके प्रभावसे तेजुलेश्या शक्ति उत्पन्न हुई २ थी।

जब भगवान उसके पाससे जारहे थे, तब गोशालाने उस तपस्वीका उपहास किया और उसे दुर्वचन बोले।

अपनी निन्दाको सुनकर तापसको झट क्रोध आगया, उसने गोशालाके संहारका दृढ निश्चय करके इसपर तेजुलेश्या शक्ति छोड़ी।

तब भगवान्ने दया करके शीतलतेश्या छोड़कर उसकी प्राण रक्षा की यदि आप ऐसा न करते तो गोशाला जलकर तुरन्त भस्मसात् हो जाता, परन्तु आप परम दयालु वा करुणासमुद्र थे अतः आपने कष्ट दाताकी भी दुःखमें सहायता करके उसके प्राण बचाये।

उत्तम पुरुषों का लक्षण भी यही है यथा—

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

पुनः भगवान् वीर प्रभु विहार करते हुये श्रावस्ती नगरीमें आये तथा दशवां चतुर्मास यहां ही कर दिया, चतुर्मासके पश्चात् एकदा भगवान् म्लेच्छ देशमें चले गये, वहां आपको ग्राम शार्दूलोंके बड़े भयानक दुःख सहन करने पड़े, वहां आपने दृढ भूमि (अनार्य्यधरती) के पेढाल उद्यानमें जाकर अष्टम भक्त करके कायोत्सर्ग कर दिया, देवकृत उपसर्ग भी आपने सहन किये. निरंतर दश मास पर्यन्त आपको वहां कष्ट पर कष्ट होता रहा, किन्तु आप अपनी दृढ क्रियाओंमें दृढ रहे और इन उपसर्गोंसे चलायमान नहीं हुये ।

फिर आपने एकादशवां चतुर्मास वैशाला नगरीमें किया, इसके पश्चात् आप कौशम्बी नगरीमें गये और वहां पोषवदी एकमको आपने अभिग्रह किया यथा—

पृथिवी नाथस्य सुता भुजिपु चरितां जंजीरतां मुण्डितां
क्षुनि क्षमा रुदति विधाय पदयोरन्तर्गतां देहली ।
कुल्माषानुग्रहरूपव्युपरमे सूर्यस्य कोणे स्थिता
नुदध्यात्पाणिकं तदा भगवते सोयं महाभिग्रहे ॥

(१) द्रव्यसे उड़दके बांकुले जो शुष्क किये हुये हों उनका भोजन लूंगा ।

(२) क्षेत्रसे दाता का एक पग द्वारके भीतर हो और दूसरा द्वारके बाहिर ऐसे दातासे आहार लूंगा ।

(३) कालमें मध्याण्हके समय आहार ग्रहण करूंगा।

(४) भावमें तब लूंगा, कि देनेवाली राजाकी कन्या हो तथा दासीकी दशामें हो, शिरमें मुण्डित हो, तीन दिनके उपवासका पारणा करने लगी हो, रुदन करती हो, वा उसके पगोंमें जंजीर पडी हो और उसके आहार देनेके विचार भी हो।

सो यदि पूर्वोक्त रीतिसे आहार मिलेगा तो लेलूंगा नहीं तो मैं अन्न पानी ग्रहण नहीं करूंगा।

इस प्रकार अभिग्रह करके भगवान् कालक्षेपण करने लगे परन्तु उनकी प्रतिज्ञाके अनुसार कहीं भी आहार न मिला।

उस कालमें एक चम्पापुर नामक नगर था जिसके दधिवाहन अधिपति थे उस राजाकी धारणी राणी थी और चन्दनबाला शीलशिरोमणि पुत्री थी तथा उसी कालमें कौशाम्बी नगरी (जहा भगवानने अभिग्रह ग्रहण किया था) के अधिपति सन्तानीक महाराज थे, किसी कारण दधिवाहन वा सन्तानीक राजामें परस्पर विरोध हो गया।

सो एकदा सन्तानीक राजा अपना कटक प्रस्तुत वा सज्जित करके संग्राम के लिये चम्पा नगरीमें आगया तब संग्राम होना प्रारम्भ हो गया, सहस्रों पुरुषोंका वध हुआ, रुधिर नदियों की आकृतिमें बहने लगा, अस्थियोंकी राशियां लग गई, अंतमें सन्तानीक राजाने जय प्राप्त करके नगर लूटनेकी आज्ञा देदी।

तब एक सैनिक पुरुष राजभवनमें घुसकर राणी और उसकी कन्या चन्दनबालाको बलात्कारसे उठाकर कौशम्बी नगरीमें ले आया, किन्तु राणीने किसी शस्त्रादिके प्रयोगसे अपनी घात करली जिससे वह संसार त्याग कर परलोक-वासिनी हुई।

पश्चात् सैनिक पुरुषने विचार किया कि-एकतो मर गई यदि मैंने दूसरीको विषयादिकी आशा पर कुछ कहा तो ऐसा न हो कि यह भी प्राण छोड़ दे और मेरे हाथ कुछ भी न आवे।

यह विचार कर चन्दनबालाको बाज़ारमें लेजाकर विक्रय करने लगा. पुण्ययोगसे वहां पर धन्ना नामक सेठ (जो बड़ा धर्मज्ञ वा सत्यवादी था) आगया. उसने चन्दनबालाको मोल ले लिया. और उसे धर्मकी पुत्री बनाकर अपने घरमें ले आया।

सेठजी की भार्याका नाम मूला था जो अति क्लेशप्रिया वा कलहकारिणी थी सेठजीने उससे कहा कि-हे सेठानी! यह अबला बड़ी दुःखिया है मैं इसे अपनी धर्मपुत्री बनाकर लाया हूं अतः तू भी इसे निजपुत्री समझकर इसकी रक्षा कर यह कहकर सेठजी अपने व्यवहारमें लग गये।

इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा किन्तु दुष्टा मूलाके मन में सदा दुष्टभाव रहते थे वह विचारती थी कि सेठजी इसे कन्या २ तो कहते हैं. स्यात् वह इसे अपनी स्त्री बनाले क्योंकि यह अतिरूपवती और प्रौढ़यौवना है यदि मैं इस

उसकी ऐसी दशा देखकर और अपने अभिग्रहको पूर्ण हुआ जान वहां आकर आपने उससे आहार ले लिया यह प्रतिज्ञा पांच दिन न्यून छह मासमें सम्पूर्ण हुई, अर्थात् भगवान्को पांच दिन न्यून ६ मास पीछे यह उड़द आहार मिला, जिससे आपने इस घोर अभिग्रहका पारणा किया।

इसके अनंतर भगवानने द्वादशवां चतुर्मास चम्पा नगरी में किया। चतुर्मास काल सम्पूर्ण होनेपर वीर प्रभु अन्यत्र विहार कर गये, तथा अनुक्रमसे विचरते हुये एकदा षड्ग्राम के बाह्य उद्यान में पधारे और वहां पर ही त्रयोदशवां चतुर्मास करके ठहर गये। तब आपको देवों मनुष्योंने घोर उपसर्ग दिये जो कि परम दुःसह वा भयंकर थे आपने उन्हें बड़ी वीरतासे शान्तिपूर्वक सहन किया। इस प्रकारसे विचरते हुये श्री श्रमण भगवान् महावीरजीको जो २ उपसर्ग वा

---

* ऐसा शुद्ध आहार ऐसे शुद्ध पात्रमें देनेसे वहां देवोंने साढे बारह कोटि सुवर्णयोंकी दिव्य वर्षा की और चन्दनबालाकी लोहशृंखला (बेड़ीयां) काट दीं तथा उसके शरीरको शृंगारयुक्त कर दिया पश्चात् राजाने उसके पास आकर कहा, कि-हे कन्ये! तू धनको ग्रहण कर और मैं तेरा विवाह कर देता हूं परन्तु चन्दनबालाने यह वचन स्वीकार न किया तथा उत्तर में राजासे कहा कि-"महाराज, मैं विवाह न कराऊंगी, परन्तु जबतक भगवान्को केवल ज्ञान न उत्पन्न होगा तबतक मैं संसार में रहकर साध्वीके शास्त्रमें रहूंगी, पश्चात् दीक्षा ग्रहण करूंगी"।

† आपको एक संगम नामक देवने षट्मास पर्यन्त घोर उपसर्ग किया परन्तु आपने बड़ाही शांतिपूर्वक उसको भी सहन किया अंतमें वह देव नम्र होकर चला गया।

परिषह देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धि हुये वह समस्त उपसर्ग आपन अव्याकुल हृदयसे, अविक्षिप्त चित्तसे तथा अदीन मनसे तीनों योगोंद्वारा सम्यक् प्रकारसे क्षमण किये वा हितार्थ सहन किये, किन्तु कदापि अधीरता वा कायरता नहीं की, प्रत्येक परिषहके सन्मुख आप ऐसे होते थे जैसे मदोन्मत्त हस्ती शत्रू की सेनामें निर्भीक होकर जाता है।—

इस विधिसे विहार करते हुये आपको १२ वर्ष और १ दिन न्यून ६ मास व्यतीत हो गये थे।

एकदा आप जृंभि नामक ग्रामके बाहिर ऋजुपालिका नदीके उत्तर कूलपर श्यामाक नामक गृहपतिके करषणके समीपस्थ वैयावृत्य चैत्य (उद्यान) की ईशान कूणमें शाल-वृक्षसे न अति दूर और न अति निकट स्थानपर विराजमान हो गये और कायोत्सर्ग करने लग गये।

रात्रिके समय आपको अकस्मात् निद्रा आगई जिससे आप शयन कर गये।

उस समय आपको दश स्वप्न आये जिनका विवर्ण सूत्र श्रीभगवती, शतक सोहवां उद्देश ६ में और सूत्र श्रीमद् स्थानांगजीके दशवें स्थानमें किया गया है।

यथा—

समणे भगवं महावीरे छउमत्थ कालियाए अंतिम राइयंसि इमे दस महासुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे तं जहा—एगं चणं महं घोररूवं

जाव पडिबुद्धे. तणं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरति २ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्त जाव पडिबुद्धे तणं समणे भगवं महावीरे विचित्त ससमय पर समय दुवालसंगं गणिपडिगं आघवेति पन्नवेति परूवेति दंसेति निदंसेति उवदंसेति तंजहा आयारं सूयगडं जाव दिट्ठिवायं ३ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे. तणं समणे भगवं महावीरे दुविहे धम्मे पन्नवेति तंजहा आगार धम्मं वा अणगार धम्मं वा ४ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयगोवग्गं जाव पडिबुद्धे. तणं समणे भगवं महावीरे चाउवण्णाइण्णे समणसंघे पन्नत्ता तंजहा समणाउ समणीउ सावयाउ साविआउ ५ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं जाव पडिबुद्धे तणं समणे भगवं महावीरे चउविहे देव पन्नवेत्ति तंजहा भवणवासी वाणमंतर जोतिसियए वेमाणिए ६ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं जाव पडिबुद्धे तणं समणेणं भगवया महावीरेणं अणादीए अणवदग्गे जाव संसार कंतारे तिण्णे ७ जणं समणे भगवं महावीरे एगं महं दिणयरं जाव पडिबुद्धे तणं समणस्स भगवओ

उत्कट लहरें आरही हैं, ऐसे रत्नाकरको मैं भुजोंसे तर गया ७ आठवें सहस्र किरणों करके देदीप्यमान एक महासूर्य्यको स्वप्न में देखा ८ नवमें स्वप्न में मानुषोत्तर पर्वत्तको हरितवर्णीय वैडूर्य्य रत्नोंसे सर्व सीमंतमें परिवेष्टित देखा ९ दसवें–मेरुगिरिकी सर्वोच्च चूलिका पर एक अतीव प्रधान सिंहासन है सो ऐसे सिंहासन पर मैं बैठा हूं यह स्वप्न देखा ॥ १० ॥

प्रथम स्वप्न में जो भगवान्ने देखा कि मैंने पिशाचको पराजय कर दिया है उसका फल यह हुआ कि संसारभर में प्राणियोंको दुःखित करने वा एक गतिसे दुसरी गति में भटकानेवाला, और अनेक जन्मों में रुलानेवाला जो मोहनीय कर्म है, जिसके प्रभावसे आत्मा अपने निजगुणकी परीक्षा में असमर्थ हो जाता है तथा मोक्षमार्गसे पराङ्मुख रहता है, ऐसे मोहनीय कर्मपर भगवान्ने विजय पाई अर्थात् इसका नाश किया।

द्वितीय–जो आपने स्वप्न में शुक्ल पक्षोंवाले पुरुष कोकिल को देखा उसका फल आपको यह हुआ कि आपको परम शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति हुई जिसने आर्त वा रौद्रध्यानको सदा के लिये तिरस्कार हुआ।

तृतीय–जो आपने चित्रविचित्र पक्षोंवाले पुरुष कोकिल को स्वप्न में देखा उसका फल आपको यह हुआ कि–आपने चित्रविचित्र गूढ़ हृत्तोंसे पूरित यथार्थ सिद्धान्तको वर्णन किया अर्थात् स्वसमय वा परसमयरूप आचारांग, सूत्रकृतांग

हुआ कि-अखिल जगतभर में आपकी यशोकीर्ति तथा श्लाघा जल में नलकी नाईं विस्तृत हो गई. त्रिदशालय में इन्द्र और समस्त स्वर्गवासी आपकी महिमाके गीत गाने लगे मनुष्य लोक में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति आपके गुणगायन में मग्न हो गया।

जो श्री वीर प्रभुने दशवें स्वप्न में अपने आपको मेरु-पर्वतकी चूलिकापर सिंहासनारूढ देखा था उसका फल यह हुआ कि-आपने देवों मनुष्योंकी परिषदायुक्त अत्यन्त मनोहर वा विशाल समोसरण में सिंहासनारूढ होकर समस्त अतिशयों के साथ बड़ा प्रभाविक, दुर्लभ्य, मनाकर्षक, सार्वजनरोचक, परम पवित्र उपदेश निज मुखारविन्दसे प्रतिपादन करके सुनाया ॥ इति ॥

इस प्रकारसे जब आपको पूर्वोक्त दश महा स्वप्न आचुके तब निद्रा खुल गई और आप गोदुह आसनारूढ होकर कायोत्सर्ग में बैठ गये और अनित्य भावना विचारने लगे तथा परम शुक्ल लेश्या वा अत्यन्त सुन्दर अध्यवसायों में आप प्रविष्ट हो गये

आपकी छद्मावस्थाका यही अन्तिम दिवस था क्योंकि आपको दीक्षित हुए बारह वर्ष १३ वर्ष साढे छ मास हो चुके थे सो इतना समय अतिक्रान्त होने पर अथवा त्रयो-दशवा वर्ष वर्तमान होनेपर ग्रीष्म ऋतुके द्वितीय मासके चतुर्थ पक्ष में अर्थात वैशाखशुदी दशमीके दीन विजय नामक मुहूर्तमें हस्तोत्तरा नक्षत्रका योग उपागत होनेपर जिस

समस्त इन्द्र देवसमूहके साथ परिवृत्त होते हुए अत्यन्त हर्ष-पूर्वक भगवान्के पास आये और वन्दना नमस्कार की फिर एक योजन प्रमाण अनुपम समोसरण रचा।

फिर भगवान् वर्द्धमान स्वामीने वहां पर विराजमान होकर धर्मोपदेश दिया परन्तु देव अवृत्ति होते है अर्थात् उनके देवभव में व्रत उदय नहीं होता इस कारण किसीने भी व्रत तथा प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं किया।

पुनः भगवान्ने वहां से विहार कर दिया और अनुक्रमसे अपापापुरी में पधारे।

तब सुरोंने उस नगरीके समीपवर्ती एक सुन्दर उद्यान में बड़ा मनोहर रमणीय समोसरण रचा।

तब भगवान् देववृन्दसे परिवृत हुए २ पूर्व दिशाकी ओरसे प्रविष्ट हुये और एक विचित्र महासिंहासन पर बैठ गये. उस समय चारों ओरसे जयजयकारके शब्द सुनाई देते थे. देव हर्षित होकर भगवान्की स्तुति कर रहे थे तब त्रिजगद्गुरु श्री भगवान् महावीरजी अपनी वाणीरूपी पीयूषधारासे अमृतरूपी वर्षा करने लगे तथा आपने प्रतिपादन किया।

हे आर्यो! यह संसार समुद्रके समान दारुण तथा अपरिमित है। कर्म इसके मूल कारण है जैसे वृक्ष बीजसे उत्पन्न होता है इसी प्रकार जो आत्मा इस संसारमार्गमें परिभ्रमण करता है उसका मूल कारण कर्म है अर्थात् कर्मोके आधीन होकर आत्मा इस भयंकर संसारार्णव में पर्यटन करता है।

इसी प्रकार बहुत जीवोंका मर्दक मैथुनरूप महापाप भी त्यागना चाहिये।

ब्रह्मचर्य्यव्रत सर्व व्रतोंमें प्रधान और मोक्षका कारण है इसको धारण करना चाहिये। इससे उभय लोकमें सुख प्राप्त होता है। ब्रह्मचारीको देखते ही मनुष्य नमस्कार करते हैं। कर्मरूपी मलके दूर करनेके लिये भी ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करना परमावश्यक है इसी प्रकार परिग्रहमें मूर्छित न होना चाहिये इसमें मुग्ध होनेसे जीव अनेक कष्टोंको सहन करता है अतः हे आर्य पुरुषो! प्राणातिपात आदि पापोंको त्याग कर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रहादि धर्मोंको धारण करो, यदि तुम सर्वथा प्रकारसे साधुवृत्तिको धारण नहीं कर सक्ते तो श्रावकवृत्तिको ही ग्रहण करो।

स्मरण रखो, धर्मके विना तुम्हारा कोई साथी नहीं होगा। धर्मसे इहलौकिक सुख अर्थात् प्रशंसा प्रतिष्ठादि और पारलौकिक सुख अर्थात् स्वर्गमोक्षादि की प्राप्ति होती है। जीव कर्म करनेमें सदा स्वतन्त्र है किन्तु जब कर्म कर चुकता है और उसका बंध निकाचित हो जाता है तब वह पराधीन अर्थात् उन्हीं कर्मोंके वशीभूत हो जाता है, किन्तु यावत् काल पर्यन्त कर्मक्षय नहीं होते तावत् काल पर्यन्त जीव मोक्ष को उपलब्ध नहीं कर सक्ता इसलिये प्रत्येक गृहस्थको द्वादश नियम ग्रहण करने चाहिये यथा—

थूलाउ पाणाइवायाउ वेरमणं।

स्थूल जीवहिंसा से निवृत्तिरूप प्रथम अनुव्रत है, क्योंकि

सर्वथा जीवहिंसा की तो गृहस्थी निवृत्ति नहीं कर सक्ते, इसलिये प्रत्येक पुरुषको स्थूल जीवहिंसा का त्याग करना चाहिये अर्थात् जान बूझकर किसी निरपराधि जीवका वध न करना चाहिये। इस नियमसे न्यायमार्ग की अतीव प्रवृत्ति होती है। इस व्रतको राजाओंसे लेकर सामान्य जीवों पर्यन्त सब आत्माये सुखपूर्वक धारण कर सक्ती हैं। राजाओंके लिये सअपराधि जीवों को दण्ड देते समय दयाका पृथक् करना अयोग्य है क्योंकि ऐसा करने से नियममें दोष लगता है, इसलिये जिस प्रकार उक्त नियम में दोष न लगे उस प्रकारसे ही ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दंडके पश्चात् राजा की ओर से नगरमें उद्घोषणा करवा देनी चाहिये यथा—"हे मनुष्यो! इस व्यक्तिको अमुक दंड दिया जाता है इसमें महाराज (राजा) का कोई भी दोष नहीं है, अपितु जिसप्रकार इसने पापकर्म किया है उसीप्रकार इसको यह दंड दिया जाता है"। इस कथनसे भी न्यायधर्म की पुष्टि होती है।

नियमधारी को इस प्रथम व्रत की शुद्धिके लिये पांच अतिचार भी बचने योग्य है जोकि प्रथम व्रतमें दोषरूप हैं अर्थात् प्रथम व्रतको कलंकित करनेवाले है यथा—

बंधे १ वहे २ छविच्छेए ३ अइभारे ४ भत्त-पाणवुच्छेए ५

अर्थ क्रोधके वश होकर कठिन बंधनोंसे जीवोंको बांधना १ निर्दयताके साथ उनको मारना २ अङ्गोपाङ्गको

छेदन करना २ पशुकी शक्तिको न देखकर अप्रमाण भारका लादना ४ अन्नपानीका व्यवच्छेद करना अर्थात् अन्नपानी न देना ५ यह पांच अतिचार अवश्यही व्रतधारीको त्यागने चाहियें क्योंकि इनके त्यागने ही प्रथम व्रत की शुद्धि हो सक्ती है।

द्वितीय अनुव्रत।

थूलाउ मुसावायाउ वेरमणं।

स्थूल मृषावाद निवृत्तिरूप द्वितीय अनुव्रत है। कन्या भूम्यादि और गवादि पशुओंके लिये अथवा स्थापनमृषा कूटसाक्षी व्यापार तथा अन्य २ कारणोंमें स्थूल असत्य भाषण करनेसे प्रतीति का नाश हो जाता है, राज्यसे दंड की प्राप्ति होती है और आत्मा पापसे कलंकित हो जाती है इसलिये असत्य भाषी नहीं होना चाहिये, अपितु यह न समझ लीजिये कि स्थूल ही मृषावाद छोड़ने योग्य है किन्तु सूक्ष्म की आज्ञा है। हे पुरुषो! सूक्ष्म की आज्ञा नहीं है किन्तु दोष न लग जाने पर स्थूल शब्द ग्रहण किया गया है अपितु असत्य सर्वथा ही त्यागनीय है और जीव को सदैवकाल दुःखित करनेवाला है, संसारचक्र में परिवर्तन करानेवाला सुकर्मोंका नाशक है। इसलिये आत्मारक्षक द्वितीय अनुव्रतकी पुष्टि अर्थात् शुद्धिके लिये पांच अतिचार वर्जने योग्य है यथा—

सहसाभक्खाणे १ रहसाभक्खाणे २ सदा-
रमन्तभेए ३ मोसोवएसे ४ कूडलेहकरणे ५

हैं और पांचही अनुव्रत इनके द्वारा सुरक्षित हैं। हे देवानुप्रियो! प्रथम गुणव्रतका नाम दिग्व्रत है जिसका अर्थ 'पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधो दिशाओंका परिमाण करना' है। पुरुष जितनी मर्यादा करेगा, उतनाही आस्रव निरोध होगा। सो इस व्रतके भी पांचही अतिचार समाचरण अयोग्य हैं यथा—

उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे १ अहोदिसिपमाणाइक्कमे २ तिरियदिसिपमाणाइक्कमे ३ खेत्तवुड्ढि ४ सइअंतरद्धा ५

अर्थः—ऊर्ध्व दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना १ अधो दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना २ तिर्यग् (मध्य) दिशाके प्रमाणका अतिक्रम करना ३ क्षेत्रकी वृद्धि करना ४ स्मृत्यन्तर्धा (शंका होनेपर भी प्रमाणसे अधिक गमन करना) ५ यह पांचो अतिचार दिग्व्रतको कलंकित करनेवाले हैं।

द्वितीय गुणव्रत।

जो वस्तु एकवार भोगने में आवे तथा जो वस्तु वारम्वार भोगनेमें आवे इनका परिमाण करना सो ही द्वितीय गुणव्रत है इसव्रतके अन्तर्गत ही छब्बीस बोल वस्तुओंका परिमाण अवश्य करना चाहिये जो इस प्रकार हैः—

१ उल्लणियविहि शरीरके पूछनेका वस्त्र अर्थात् तौलि
२ दंतणविहि दातन ३ फल केशादि धोव

नके वास्ते) ४ तैल ५ उद्वर्तन (उबटना) ६ मज्जन ७ वस्त्र अर्थात् वस्त्रोंकी जाति संख्या ८ विलेपन (चंदनादि) ९ पुष्प (शरीरके परिभोगनार्थ पुष्प) १० आभूषण (रत्नादि) ११ धूप १२ पेय (पीनेवाली वस्तु) १३ भक्ष (खानेवाली वस्तु) १४ ओदन १५ सूप (दाल) १६ घृतादि १७ शाक १८ माधुरक १९ जेमन २० जल (कूप या तालाबका) २१ ताम्बूलादि २२ वाहन २३ जूती आदि २४ शय्या २५ सचित्त वस्तु (पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु-आदि) २६ द्रव्योंका प्रमाण करना चाहिये तात्पर्य यह है कि विना परिमाण कोई भी वस्तु ग्रहण करना श्रमणोपासकको अनुचित है सो इसके पांच ही अतिचार हैं यथा—

सचित्ताहारे १ सचित्त पडिबद्धाहारे २ अप्पउलिओसहिभक्खणया ३ दुप्पउलि ओसहि भक्खणया ४ तुच्छओसहि भक्खणया ५

अर्थः—सचित्त वस्तुका आहार १ सचित्तप्रतिबद्धका आहार २ अपक्व आहार ३ दुःपक्व आहार ४ तुच्छौषधिका आहार ५ इन पांच अतिचारोंको वर्जके फिर १५ कर्मादान भी त्यागनीय हैं क्योंकि इन पंचदश कर्मोंके करनेसे महाकर्मोंका बंध होता है सो गृहस्थोंको जानने योग्य हैं अपितु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं यथा—

१ अङ्गार कर्म (कोलोंका व्यापार) २ वनकर्म (वन कटवाना) ३ शकटकर्म (शकटादिका व्यापार) ४ भाटक-कर्म (पशुओंको भाड़े पर देना) ५ स्फोटकर्म (कुदाल

हतादिसे भूमिको दारण करना) ६ दन्तवाणिज्य (हस्ती आदिके दांतोंका व्यापार करना) ७ लाक्षा वाणिज्य (लाख तथा मनीठाका व्यापार) ८ रसवाणिज्य (घृत, तेल, गुड़ मदिरादिका व्यापार) ९ विषवाणिज्य १० केश-वाणिज्य ११ यन्त्रपीड़न कर्म (कोल्हु ईख पीड़नादि कर्म) १२ निर्लाञ्छन कर्म (पशुओंको नपुंसक करना वा अवयवों का छेदन भेदन करना) १३ दवाग्निदान (वनादि जलाना) १४ सरोहृदतड़ाग परिशोषणता (जलाशयोंके जलको शो-षित करना. इस कर्मसे जो जीव जलके आश्रयभूत हैं वा जो जीव जलसे निर्वाह करते हैं उन सबको दुःख पहुंचता है और निर्दयता बढ़ती है) १५ असतीजन पोषणता कर्म (हिंसक जीवोंका पालना यथा—मार्जार, श्वानादि) यह कर्म गृहस्थोंको अवश्य ही त्याज्य हैं। तदुपरान्त तृतीय गुणव्रत धारण करना चाहिये।

तृतीय गुणव्रत।

हे देवानुप्रियो! तृतीय गुणव्रत अनर्थ दंड है। जो वस्तु ग्रहण करनेमें न आवे और किसीके उपकारार्थ भी न हो, निष्कारण जीवोंका मर्दन भी हो जावे ऐसे निंदित कर्मोंका अवश्यमेव ही परित्याग करना चाहिये। इस अनर्थ दण्डके मुख्य चार कारण हैं यथा—

(अवज्झाण चरियं पमायचरियं हिंसप्पयाणं पावकम्मो-वएसं) आर्त्तध्यान करना क्योंकि इसके द्वारा बहु कर्मोंका बंध, चित्तकी अशान्ति, धर्मसे पराङ्मुखता इत्यादि कुत्स

प्रथम शिक्षाव्रत ।

यह मनुष्य जन्म अतीव पुण्योदय से प्राप्त हुआ है उन
सफल करनेके लिये दोनों समय सामायिक करना चाहिये
* सम-आय-इक इन तीनोंकी संधि करनेसे सामायिक
शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ यह है कि आत्माको
शान्ति मार्गमें आरूढ़ करना वा जिसके करनेसे शान्ति प्राप्त
हो उसीका नाम सामायिक है । सो इस प्रकारसे भाव
सामायिकको दोनों काल करे । फिर प्रातःकाल और सन्ध्या-
कालमें सामायिककी पूर्ण विधिको भली भांतिसे करता
हुआ सामायिक सूत्रको पठन करके इस प्रकारसे विचार करे
कि—यह मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, केवल कर्मोंके अंतरसे
ही इसकी नाना प्रकारकी पर्याय हो रही है और अनादि
काल के कर्मोंके संगसे इस प्राणीने अनंत जन्म मरण
किये है । फिर पुनः २ दुःखरूपी दावानलमें इस प्राणीने
म कष्टोंको सहन किया है, और तृष्णाके वशमें होता हुआ
तम ही मृत्युको प्राप्त होजाता है । सो ऐसे परम दुःखरूप
ान्चकसे विमुक्त होनेका मार्ग केवल सम्यग ज्ञान सम्यग
न सम्यग चारित्र ही है सो जब प्राणी आलवके मार्गको
करता है और आत्माको अपने वशमें कर लेता है, तब

व्रतके धारण करनेसे बहुत ही पापोंका प्रवाहबंधहो जाता है। इसके भी पांच ही अतिचार हैं यथा—

आणवणप्पओगे १ पेसवणप्पओगे २ सद्दाणुवाए ३ रूवाणुवाए ४ बहियापोग्गलपक्खेवे ५

अर्थः—बाहिर की वस्तु आज्ञा करके मंगवाना १ परिमाणसे बाहिर भेजना २ शब्द करके अपनेको प्रगट करना ३ रूप करके अपने आपको प्रसिद्ध करना ४ पुद्गल प्रक्षेप करके प्रगट करना ५ यह अतिचार व्रत में दोषरूप हैं। तदनन्तर पौषधव्रत अवश्य ही धारण करना चाहिये जिसके धारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा वा तपकर्म दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं।

तृतीय शिक्षाव्रत।

उपाश्रयमें वा पौषधशालामें तथा स्वच्छ स्थानमें अष्ट यामपर्य्यन्त एक स्थानमें रहकर उपवास व्रत धारण करना उसका ही नाम पौषधव्रत है। अपितु पौषधोपवासमें अन्न, पाणी, खाद्यम, स्वाद्यम, इन चारों ही आहारका प्रत्याख्यान होता है, और ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है। अपितु मणि सुवर्णादिका भी प्रत्याख्यान करना पड़ता है, शरीरके शृंगारका भी त्याग होता है, अपितु शस्त्रादि भी पास रक्खे नहीं जा सक्ते और सावद्य योगोंका भी नियम होता है। इस प्रकारसे पौषधोपवासव्रत ग्रहण किया जाता है। प्रतिमासमें षट् पौषधोपवास करे तथा शक्ति प्रमाण अवश्य ही धारण

किन्तु दोषयुक्त अशुद्ध अकल्पनीय आहारादि पदार्थ न देने अच्छे हैं क्योंकि नियमका भंग करना वा कराना यह महा पाप है। अपितु वृत्तिके अनुसार आहारादिके देनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, वृत्तिके विरुद्ध देनेसे पापका बंध होता है। इस लिये दोषोंसे रहित प्राशुक एषनीय आहारादिके द्वारा अतिथि संविभाग नामक व्रतको सम्यक् प्रकारसे आराधन करे और पांचों अतिचारोंका भी परिहार करे, जैसेकि—

सचित्त निक्खेवणया १ सचित्त पेहणिया २
कालाइक्कम्मे ३ परोवएसे ४ मच्छरियाए ५

अर्थः—न देनेकी बुद्धि से निर्दोष वस्तुको सचित्त वस्तुपर ख देना १ निर्दोषको सचित्त वस्तुसे ढांप देना २ काल अतिक्रम करना ३ परको आहारादि देनेके लिये उपदेश देना और स्वयं लाभसे वंचित रहना ४ मत्सरितासे देना ५ इन पांचों अतिचारोंको त्यागकर चतुर्थ शिक्षाव्रत पालन करना चाहिये।

सो यह पांच अनुव्रत, तीन अनुगुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं द्वादश व्रत गृहस्थी धारण करे, इसका नाम देशचारित्र है, क्योंकि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र, तीन ही मुक्तिके मार्ग हैं। इन तीनोंको ही धारण करके जीव संसारसे पार हो जाते हैं। इसलिये सदैवकाल सुकर्मोंमें उपस्थित रहना चाहिये।

---

१ यह द्वादश व्रत जैन सिद्धान्तके आश्रयसे लिखे गये हैं परन्तु इनका पूर्ण विवर्ण श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्रसे देखना चाहिये.

सदृश आत्माको तृप्त करनेवाली है, तथा संसारमें दुःखरूप प्रचंड दावानलको उपशान्त करनेके लिये यह दया मेघ मालाके तुल्य है भवभ्रमणरूप महा व्याधिके वास्ते रोग कुठार नामक परमौषध है। इस अहिंसाव्रतके द्वारा समस्त ब्रह्माण्डवासी जीवोंके साथ मैत्रीभाव हो जाता है, इसलिये मुनियोंका सबसे प्रथम महाव्रत प्राणातिपात विरमण है इस महाव्रतकी पांच भावना हैं। जैसेकि—

"वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान भोजनानिपञ्च" ॥

(तत्वार्थ सूत्र अ० ७)

प्रथम भावना—वचनको वशमें करना, और दुःखप्रद कटुक, सावद्यकारी, परमर्मभिन्दक, क्लेहउत्पादक तथा दु वचन भाषण न करना। मृदुभाषी वा सबके हितैषी होना

द्वितीय भावना मनको वशमें रखना, और हिंसादि कुकर्मोंकी ओर जानेसे रोकना, अर्थात् मनके द्वारा किसी भी जीवकी हानि चिंतवन न करना, क्योंकि मनको शु धारण करना महाव्रतोंकी रक्षाके लिये आवश्यक है

तृतीय भावना-प्रथम महाव्रतधारी मुनि उठना बैठना चलना, फिरना, गमनागमन [illegible] करना [illegible] अवयवोंको संकोचना वा [illegible] [illegible] विनयपूर्वक [illegible] [illegible] वा विवेक करे

पंचम भावना—सत्य व्रतकी रक्षाके लिये मुनिको चाहिये कि—वह विनाविचारे कभी भाषण न करे, तथा चपलता युक्त कटुक, सावद्यकारी और कौतूहलमय वचन उच्चारण न करे क्योंकि—इन वचनोंके भाषण करनेसे सत्य व्रत नहीं रह सकता इस लिये मुनि इसका भी त्याग करे और इन पांच भावनाओं द्वारा द्वितीय मृषावाद विरमण महाव्रतको शुद्ध धारण करे ॥

सव्वाओ अदिन्नादाणाउ वेरमणं ।

सर्वथा प्रकारसे अदित्तादान (विना दिये लेना व चोरी) का त्याग करना चाहिये. अर्थात् तीनों करणों तथा तीनों योगोंसे चौर्यकर्मका परित्याग करना. जैसेकि आप चौर्यकर्म न करे. औरोंसे न करवावे. तथा जो चौर्यकर्म करते हैं उनकी अनुमोदना न करे मनसे, वचनसे और कायसे. इसे तृतीय महाव्रत कहते हैं. जो पुरुष इस व्रतको अंगीकार करते हैं उनकी इस लोकमें यशोकीर्त्ति वा प्रतिष्ठा विस्तीर्ण हो जाती है. चाहे फिर वह कहींपर बैठे या कहीं खड़ा होवे. लोग उससे घृणा वा संकोच नहीं करते । सबको उस पुरुषका विश्वास हो जाता है । इस व्रतके धारी पुरुषको किसीका भय नहीं रहता तथा उसका आत्मा सदैव [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दशा दीन वा शोचनीय हो जाती है। चौर पुरुषोंके अंगोपांग छेदन किये जाते हैं, किसी २ को तो फांसी भी दी जाती है। चौर पुरुष संसारभरमें निर्लज्ज, प्रतिष्ठा वा विश्वासरहित हो जाता है। कारागृह आदिकोंके परम दुःसह्य दुःख भी उनको सहन करने पड़ते हैं। सज्जन जनोंकी पंक्तिसे स्तेन पुरुष दूर रहते हैं, उनके दौर्भाग्यकी प्रतिदिन वृद्धि होती है, भले मनुष्य चौर्यकर्मकारीको धिक्कार देते हैं। नीचसे भी नीच पुरुषोंके परुष वचन चौर्य कर्मकर्ताओंको सहन करने पड़ते हैं। यथोक्तम्—

वरं वन्हिशिखा पीता सर्पास्यं चुम्बितं वरम्।
वरं हालाहलं लीढं परस्य हरणं न तु ॥ १ ॥

अर्थः—अग्निकी दीप्त शिखाका पान करना, सर्पके मुंहको चुंबन करना और विषका भक्षण करना ये सब कार्य करने श्रेष्ठ हैं, किंतु दूसरोंका धन हरण करना अर्थात् चौर्यकर्म करना सुन्दर नहीं है। इस लिये सर्वथा प्रकार चौर्यकर्मका परिहार करके मुनिको तृतीय महाव्रत धारण करना चाहिये। इसकी भी पंच भावना हैं। यथा—

"शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्म्मा विसंवादाः पञ्च" ॥

तत्वार्थ सूत्र.

प्रथम भावना—निर्दोष वसती शुद्ध योगोंका स्थान जहांपर किसी प्रकारका विकृतिभाव उत्पन्न नहीं होता, और वह स्थान ग्राम्यादिके स्थानों करके भी मुक्त है तथा स्त्री,

मान भी होते हैं परन्तु तो भी चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना आदि चेष्टायें नहीं देखी जातीं। इससे सिद्ध हुआ कि-उस समय अन्य सर्व वस्तुओंके (देह इन्द्रियादिके) विद्यमान होते हुये भी जीवके न होनेसे पूर्वोक्त चेष्टाओंका अभाव है अतः सिद्ध हुआ कि शरीर और इन्द्रियोंसे आत्मा (जीव) अतिरिक्त नित्य पदार्थ है वह तीन कालमें शाश्वत रहता है किन्तु पर्यायकी अपेक्षासे तथा कर्मोंकी प्रबलतासे संसारचक्रमें निरन्तर पर्य्यटन करता हुआ नाना प्रकारकी योनियोंको प्राप्त होता है और जब पूर्व पुण्योदयसे कभी धर्ममार्गमें आता है वा सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन वा सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रयको ग्रहण करलेता है तब समस्त विकराल कर्मोंका नाश करके मोक्ष प्राप्त करता है।

इस प्रकार भगवान्के वचनामृत श्रवण करके वायुभूति अपने पांचसौ (५००) शिष्योंके साथ दीक्षित हो गया और अपने ज्येष्ठ भ्राताओंके सदृश साधु आचार सम्यक् प्रकारसे आराधन करने लगा।

इसके पश्चात् अग्नि भी सोचने लगा कि-यह वाय वर्णित भगवान निश्चयही सर्वज्ञ हैं जिन्होंने इन्द्रभूत्यादि [illegible]

न होनी चाहिये परन्तु यह तो संसारमें प्रत्यक्ष देख जाता है।

९ कारणोंसे जीव पुण्य संचित करते हैं—यथा—

(१) अन्नदानसे (२) जलदानसे (३) मकानदान (४) शय्यादानसे (५) वस्त्रदानसे (६) मनशुभ वर्तानेसे (७) वचन शुभ कहनेसे (८) कायाको धर्म कार्यमें लगानेसे (९) और अच्छे साधुओं वा तपस्वियोंको नमस्कार करनेसे (जीव पुण्यका संचय करते हैं)।

इनका फल प्राणी ४२ प्रकारसे सुखपूर्वक भोगते हैं और अष्टादश (१८) कारणोंसे जीव पापकर्मोपार्जन करते यथा—

(१) जीवहिंसा (२) मृषावाद (३) चौर्य्य (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रतिअरति (१७) मायामृषा (१८) मिथ्या दर्शनशल्य।

इन अष्टादश कारणोंसे जीव पापकर्मोंका संचय करते और इनका परम दुःखफल ८२ प्रकारसे भोगते हैं।

श्रमण भगवान महावीरने इस अनुक्रम पापपुण्य विभागपूर्वक भिन्न करके विवरण सुनाया. जिससे अच्छे प्राणीको पुण्य पापके अस्तित्वका ज्ञान हस्तामलकवत् हो वा सत्य प्रतीत होने लगा. तथा इस विषयमें इनको कि संशय भी शेष न रहा।

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः॥

(तत्वार्थसार)

अर्थात् जैसे बीजके दग्ध होनेपर फिर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार कर्मरूप बीजके दग्ध होनेपर जन्म (भव) रूप अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती, और उसके सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी, परमात्मा, ईश्वर, अशरीरी, सर्व शक्तिमान् इत्यादि नाम कहे जाते हैं।

इस प्रकार भगवान्की योजन व्यापिनी सुधाभरणी मिथ्यात्व तिमिर विनाशिनी, लोकोत्तर परम दिव्यवाणीको सुनकर प्रभासजी निःसंशय होगये। और उसी समय अपने ३०० अन्तेवासिओंके साथ परम वैराग्यसे भगवान्के पास परिव्रजित (साधु) हो गये।

यह पूर्वोक्त इन्द्रभूति आदि एकादश पंडित (जो कि महाकुलीन, महाप्राज्ञ, चतुर्वेद तथा षट्शास्त्र वा सांगोपांग वेत्ता सकल कलानिष्णात, पदार्थवित् और विश्ववंदित थे) भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामीके प्रधान शिष्य हुये इससे ऊपर लिखा जा चुका है कि- दधिवाहन राजाकी कन्या चन्दनबाला जी जो कि अपने शीलव्रतके आश्चर्यकारी प्रभावको दिखाकर कौशाम्बी नगरीके महाराजाधिराज शतानीकके गृहमें इस आशासे दासी हुई थी कि भगवान वर्द्धमानस्वामीको जब केवल ज्ञान हो जावेगा तब मैं महाराजकेपास दीक्षित हो जाउंगी चन्दनबालाके ऐसे प्रणाम जानकर राजामात्यों

इस अनुक्रमसे चार प्रकार अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाके संघके होचुकनेके पश्चात् भगवान्ने इन्द्रभूति आदिक एकादश प्रधान शिष्योंको ध्रौव्योत्पाद व्ययात्मक त्रिपदी मंत्र दिया अर्थात् यह बताया कि समस्त संसारमें केवल ६ द्रव्य हैं जैसे-(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५) पुद्गल (६) जीव।

इन ६ द्रव्योंसे अतिरिक्त अन्य कोई सातवां पदार्थ जगत्में नहीं है और इन षट् द्रव्योंमेंसे प्रत्येक २ की तीन २ पर्यायें होती हैं यथा-उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। कल्पना करो कि किसी पुरुषके घर कोई बालक उत्पन्न हुआ तो वहांपर उसबालकके जीवकी उत्पत्ति कही जाती है और जहांसे वह मृत्यु होकर आया है वहां उसकी मृत्यु कही जाती है, परन्तु आत्मा वैसाही है न वह मरा है और न उसकी उत्पत्ति हुई है इसलिये वह ध्रौव्य है क्योंकि जीव त्रयकाल अविनाशी, नित्य, द्रव्य है इसी प्रकार अन्य पांच द्रव्योंकी भी तीन २ पर्यायें होती हैं इस त्रिपदी मंत्रसे उनको मति, श्रुति, अवधि तथा मनः पर्यव चारों ज्ञान और चतुर्दश पूर्वकी विद्या प्रगट हुई तब उनके गणधर पदवी भी उदय हो गई अर्थात् यह एकादशही विद्वान गणधर पदवीसे विभूषित हो गये।

पुनः इन्होंने द्वादश अंग और चतुर्दश पूर्वकी रचना की यथा—

गया है और जिस प्रकार वह जीव मोक्षगत हुये हैं वह सर्व वर्णन श्रवण करने योग्य है।

इस सूत्रका एक श्रुतस्कन्ध है और आठ इसके वर्ग हैं तेईसलाख चार सहस्र (२३०४०००) इसके पद हैं, संख्यात वाचनादि हैं, आठ (८) उद्देश काल हैं।

(९) अनुत्तरोपपातिक-जो आत्मा पांच अनुत्तरों विमानोंमें उत्पन्न हुये हैं उनके नगर, मातापिता, राजा, दीक्षा, इनकी ऋद्धि, धर्माचार्य्य, तप, कर्म, अभिग्रह आदि करके फिर अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुये अपितु वहांसे च्युत होकर फिर आर्यकुलमें जन्म लेकर, फिर दीक्षित होकर, केवल ज्ञानकी प्राप्ति होगी, फिर वह जीव मोक्षगमन करेंगे इत्यादि विषयोंका सविस्तर स्वरूप वर्णन किया गया है, इस सूत्रका एक श्रुतस्कन्ध है और तीन इसके वर्ग हैं छयालीस लाख आठ सहस्र पद हैं (४६०८०००) संख्यात वाचनादि हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणांग-इस सूत्रका भी एकही श्रुतस्कन्ध है पैंतालीस ४५ इसके अध्याय हैं इनमें सैंकड़ों प्रश्नोंके उत्तर हैं और नाना प्रकारके प्रश्न हैं नाना प्रकारकी विद्याओंका भी इनमें विवरण किया है देवताओंके भी साथ मुनियोंके नानाप्रकार के प्रश्नोत्तर हुये हैं फिर आश्रव सम्बन्धी भी पूर्ण विवरण किया गया है इस सूत्रके बयानवे लाख सोलह सहस्र (९२१६०००) पद हैं और व्याकरणसम्बन्धि भी नानाप्रकारकी संख्यात वाचनादि हैं।

(११) विपाकसूत्र—इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, बीस २०

भगवान्के समवसरणमें जो महामानी पुरुष आते थे, वह भी भगवान् की अतिशय देखकर अपने संशयोंको दूर करके श्री भगवान्के शिष्य हो जाते थे तथा उनका मान किसी निमित्त द्वारा दूर हो जाया करता था. यथा—

दशार्णभद्र राजाका मान इन्द्र महाराजने दूर किया और दशार्णभद्र नरेन्द्र दीक्षित हुआ और परम सुकुमाल शालिभद्र आदि शेठ भी भगवान्के चरणारविन्दमें दीक्षित हुये श्री भगवान् महावीर स्वामीजीने गोशालाजीके केवल होनहार वादका खण्डन करके काल, स्वभाव, नियति, कर्म, और पुरुषार्थवादको स्थापन किया।

इसी कालमें गौतमबुद्धने अपने अफलवादका प्रचार करना प्रारम्भ किया हुआ था तब श्रीभगवान्ने अफलवादका भी खण्डन किया और आर्द्रकुमारादि राज्यकुमारोंने बुद्धके साथ शास्त्रार्थ करके गौतमबुद्धको पराजय किया अपितु भगवान्के कथन किये हुये सत्यवाद की (आत्मवाद) चारों ओर उद्घोषणा करदी लाखों प्राणियोंको अहिंसामय धर्ममें स्थापन करके मोक्ष अधिकारी बनाया।

मुनियोंके पांच महाव्रत दश प्रकारका श्रमणधर्म बारह द्वादश प्रकारके तपकर्म प्रतिपादन किये और गृहस्थोंके द्वादश व्रत एकादश प्रतिमायें प्रतिपादन की. असंख्य वा अनंत आत्माओंके प्राण बचाये. अहिंसा धर्मको उच्च कोटिमें अंकित किया प्राणिमात्रको धर्माधिकार दिया गया. इसी का-

तब स्कंधकजीने श्री भगवान्के सत्यवाक्यको स्वीकार किया और आनंदपूर्वक श्रीभगवान्के दर्शन करने लगे तब श्रीभगवान् बोले कि–हे स्कंधक! मैं तुमको उन प्रश्नोंके उत्तर देता हूं।

भो स्कंधक! मैं लोकको चार प्रकारसे मानता हूं जैसे कि–द्रव्यसे १ क्षेत्रसे २ कालसे ३ और भावसे ४ द्रव्यसे लोक एक है १ क्षेत्रसे असंख्येयक योजन कोटाकोटि प्रमाण इस लोकका आयाम (लंबाई) विष्कंभ (चौड़ाई) है और एतावन् मात्रही इसकी परिधि है २ कालसे लोक अनादि है क्योंकि–इसका निर्माता कोई नहीं है इस लिये कालसे लोक ध्रुव है नित्य है या अक्षय, अव्यय, अवस्थित है ३ भावसे इस लोकमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, और संस्थानकी अनंत पर्यायें उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं इस लिये द्रव्य और क्षेत्रसे लोक सान्त है काल और भावसे लोक अनंत है अब मैं तुमको जीवविषय भी सुनाता हूं।

द्रव्यसे एक जीव सान्त है क्योंकि–सर्व जीव अनंत हैं इसलिये जब अनंत जीवोंमेंसे एक जीवका वर्णन करें तब एक जीवको सान्त कहते हैं और आकाशके असंख्येयक प्रदेशोंपर एक जीव स्थित है इसलिये भी जीव सान्त है कालसे जीव अनादि है [illegible] है [illegible] कालसे अनादि है [illegible] अनंत [illegible] अनंत दर्शनकी पर्याय [illegible]

कर्मके आधारपर है ६ यह संसारी जीवोंकी अपेक्षा कथन किया गया है सो जीवने अजीव संगृहीत किया हुआ है ७ और जीवको कर्मोंने संगृहीत किया हुआ है ८ इसकी सिद्धिके लिये जल आदिकी बोतलोंके अनेक दृष्टान्त हैं जैसेकि-पानीकी भरी हुई बोतलके मुख बंधनको जब लोग दूर करते हैं फिर उसके मुख पर वायु आ जाती है तब वह पानी वायुके आधारपरही ठहर जाता है इसी प्रकार आकाशादिके ऊपर पदार्थ ठहरे हुए हैं तथा जैसे दृति (मशक) वायुसे पूरित कटि भागके बंधनसे लोग नदियोंको तैरते हैं इसीप्रकार लोक स्थिति है इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध किया गया है कि-वायुकी शक्ति भार सहारनेकी होती है और पदार्थोंमें परस्पर आकर्षण शक्ति है इसी लिये वह परस्पर स्नेहभावबद्ध है और पदार्थ अगुरुलघु, लघुगुरु, गुरुलघु, इत्यादि अनेक भेदोंसे देखे जाते हैं इस प्रकार लोक स्थिति होती है श्रीगौतमजी श्रीभगवान्के उत्तरोंको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

इस प्रकार भगवानने अनेक जीवोंके संशयोंको छेदन किया फिर यह भी प्रतिपादन किया कि-संघकी वैयाहत्य (सेवा) करता हुआ जीव संसार बन्धनोंसे अवश्य छूट जाता है इसलिये परस्पर वैरभावको छोड़कर क्षमाभाव धारण करो और सब जीवोंके हितैषी बनो धर्मपतितोंको धर्ममें स्थिर करो और प्राणीमात्रके सहायक बनो जिससे तुम अपना उद्धार करनेमें समर्थ हो सको।

समणे भगवं महावीरे छठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुण्डे जाव पव्वइए समणे भगवं महावीरे छठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे जाव केवलनाणे समुप्पणे समणे भगवं महावीरे छठेणं भत्तेणं अप्पाणएणं सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

अर्थात् दो उपवासके साथ श्रीभगवान् दीक्षित हुये, दो उपवासके साथही केवलज्ञानके धारक हुए और दो उपवास के साथही श्रीभगवान् निर्वाण हुये, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको तप कर्म धारण करना चाहिये।

सो इस स्थानपर श्रीभगवानका जीवन वृत्तांत पूर्ण किया गया है इस जीवनका सारांश यह है कि—अपने जीवनको भगवान्के सत्योपदेश द्वारा पवित्र करना चाहिये और श्रीभगवान्के तत्वोंका सर्वत्र प्रचार करना चाहिये, जिसके द्वारा अनंत आत्माओंको अभयदान प्राप्त हो और आप सुगतिके अधिकारी हों।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥